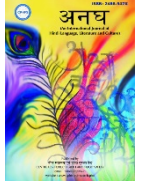




## अनघ (An International Journal of Hindi Language, Literature and Culture)

Journal Homepage: <http://cphfs.in/research.php>



### रुक-रुक कर

प्रो. गंगा प्रसाद विमल

सेवानिवृत्त प्रोफेसर,

भारतीय भाषा केंद्र,

भाषा साहित्य और संस्कृति अध्ययन संस्थान,

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

बारिश रुक-रुक कर हो रही थी। बाहर और भीतर विचित्र-सा गीलापन था जो थोड़ा अवसाद में डाल देता था कि क्या मौसम ऐसे ही रहेगा।

पलटू अपने बिस्तर में ही लेटा था। रात में उसने अपने जीवन की सबसे ज़्यादा खौफनाक घटना सुनाई थी।

“तुम मुझे डराना चाहते हो”, मैंने उस पर आरोप लगाया।

“तुझे डरा कर मुझे क्या हासिल होगा ?” उसने जोरदार अतिवाद किया, “मैं तुम्हें सिर्फ यह बताना चाहता था कि एक पहाड़ी दलित कैसी परिस्थितियों में घिर सकता है ? कोई इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। मैं खुद... कभी ऐसा सोच ही नहीं पाया”, उसने मेरे सवाल का उत्तर दिया।

“मुझे इस घटना पर विश्वास नहीं होता।”

“अब सोचता हूँ तो मुझे भी यह विश्वनीय नहीं लगती”, वह बोला, “मुझे लगता ही नहीं कि मैं इस घटना के बीच था। बीच में ही नहीं मैं इसका कारण भी था।”

“पर यह हुआ क्यों कर ?”

“अब यह तो तुम न पूछो। सब कुछ तो बता चुका।”

“वो तो ठीक है। पर...”

“पर क्या ?”

“कुछ तो ज़रूर है जो तुम छिपा रहे हो।”

“इस वक़्त तो मुझे सिर्फ अपना मुँह छिपाने की इच्छा हो रही है। तुम्हें मालूम नहीं वह एक दिन कितने हज़ारों दिन बड़ा था।” वह कह कर दूसरी तरफ पलट गया।

“फिर क्या हुआ ? उसके घर वालों ने ज़रूर हंगामा किया होगा ?” गुंडों को सुपारी भी दे चुके थे। मैं एक तरफ पुलिस से बचने के लिए वहाँ से भाग खड़ा हुआ। दूसरी तरफ अपने हत्यारों से बचने के लिए अनजान जगहों की ओर चला गया। ठेठ बचपन से मेरा यह भागना जिस तरह जारी हुआ, उसका अंत शायद कभी नहीं आएगा।”

वह बोल रहा था तो मुझे अपने कस्बे ओडाथली से पलटू के अपने गाँव चले जाना और फिर अपने गाँव से गुम हो जाने की कथा याद आने लगी।

“लडकी का बिल्कुल पता नहीं चला ?” मैंने बात पूरी समझने के लिए पूछा।

“मुझे जो मालूम है वह तो उससे भी ज़्यादा दर्दनाक है। वे कैथल के हरियाणवी थे। मूल रूप से कैथल के ही रहने वाले। पर व्यापार के सिलसिले में उनके कुछ पूर्वज पश्चिमोत्तर पंजाब से भी जुड़ गए थे। जब पंजाब में हिंसा की वारदातें बढ़ीं तो वे सब-के-सब सकुशल

पंजाब लौट आए थे।” उसने मेरी ओर करवट लेकर बताना शुरू किया।

“पर थे वे एकदम हरियाणवी। लड़कियों के जन्मने पर कभी खुशी न मनाने वाले। लेकिन कुदरत ने उनके परिवार को लड़कियों से भर दिया था। पाकिस्तान से आने के बाद धीरे-धीरे लड़कियाँ बड़ी होने लगीं और घर की सख्ती के कारण उन पर गहरी नज़र भी रखे जाने लगीं। बस यहीं से पूरे परिवार के लिए समस्याएँ बढ़ने लगीं...” पलटू अब पूरे इतिहास पर टिप्पणी कर रहा था। और मुख्य बात कहीं संकेतों से उगी झाड़ियों के बीच विलुप्त होने लगी थीं।

“डराने के बाद अब तुम उकताहट बढ़ाने वाले व्यौरों की रपट लिखा रहे हो क्या?” मैंने अपना प्रतिरोध दर्ज कराया, “यार लड़की वालों के इतिहास का इसमें क्या लेना-देना?”

“तो तुम समझ जाओगे सब कुछ।”

“बताओगे तो ही समझूंगा ना।” मैंने उसे समझाने की नीयत से कहा था। पर बीच में अब खुद मैं डर के शिकंजे में आ घुसा था। जाने कब पलटू को मारने वाले मेरी हत्या कर डालें। खयाल यही था जिसकी सच्चाई से मैं वाकिफ होना चाहता था कोई रास्ता भी नहीं सूझ रहा था।

“तू कुछ दिन मोगा घूम आ।”

“ले ! शिकारियों के फन्दे में फँस जाऊँगा जाकर। यार सारी रामायण सुनकर तू पूछ रहा है कि सीता कहीं रावण की बेटी तो नहीं।”

“अरे... वाह इन पुत्री हल्लाओं का कितना अच्छा रिश्ता निकाला तूने।” वह मेरी बात से खुश नहीं हुआ।

“बस, बस रहने दे अपना फलसफा। अब मैं घोर मुश्किल में फँसा हूँ और तू मुझे हत्यारों के बीच फूलों का गुलदस्ता ले कर खड़ा कर रहा है। वाह... तेरी दूरअन्देशी का कोई जवाब नहीं।”

“ले... बिना समझे टोका-टाकी पे लगा हुआ है। मेरा मतलब तो था कि तू कुछ दिन इन जगहों से बाहर चला जा।”

“बेटा मेरी वो हालत है कि मुझे व्यास जी ने वर दिया हुआ है कि भागता रह तो तुझे कोई पकड़ नहीं पायेगा। पर बेचारा यमराज सारे दूतों को पहले ही दौड़ाए हुए है।”

“पेहवा से उस दुपहरी जब हम मार्कण्डा के लिए लौट रहे थे तो तू भाग कर कहाँ छिप रहा था ?”

“अरे वो ही तो थे कैथल के हत्यारे। उन्हें शक है कि उनकी लड़की को अगवा करने में मेरा हाथ है। शक ही नहीं, वे तो मेरे

दोस्तों को तक पूरी कहानी बता चुके हैं जबकि उन्होंने खुद अपनी लड़की की हत्या की है।”

मुझे याद आई उस दुपहरी को लौटते वक़्त सरदार जी गाड़ी चला रहे थे। हम दोनों पीछे बैठे हुए थे। सरदारनी घर पहुँच कर खाना बनाने की झंझट से मुक्ति की तजबीजें सुझा रही थी कि तभी साइड से ओवर टेक करने वाली गाड़ी से एक आवाज़ आई -- “अरे वो रहा मुस्टंडा...।” वह जोरदार आवाज़ हम सबने सुनी। इससे पहले कि वो हमारी कार के आगे अपनी कार लाएँ सरदार जी ने कुछ ऐसे करतब से कार को हल्का-सा सड़क के दूसरी तरफ ले जाने के लिए मोड़ा कि साइड वाली कार बिना किसी कोशिश सीधे सड़क की पटरी की खाईयों में जा फँसी और हम लोग बिना कुछ कटे तेज़ी से मार्कण्डा की ओर चल पड़े और कार सरदार जी ने ढाबे में आकर ही रुकी।

पलटू ने उतरने के बाद गाड़ी से सामान निकाला और हम दोनों उसे कमरे में पटक ढाबे के पीछे दो कुर्सियाँ डाल कर बैठ गए।

“कुछ ज़रूरी बातें करनी हैं”, पलटू ने माँ को यही खबर दी। परंतु इस वक़्त सरदारनी डरी हुई थी। सरदार जी भी चुप थे। बहुत बोल्लक्कड़ सरदार परिवार को गुमसुम देख मुझे भी संदेह ने घेर लिया। परंतु मैं ज़्यादा चीज़ें जानता ही नहीं था। सो सीधे पलटू के हड़काने पर ढाबे के पीछे जा बैठा।

“वे इधर आयेंगे। ढाबे की तरफ। दार जी सँभाल लेंगे सब कुछ”, पलटू ने मुझे बताया।

वह कुछ-कुछ घबराया लग रहा था।

उसने मेरा हाथ छोड़ा नहीं। इसी से मुझे हल्का-सा डर लगा।

“यार कुछ गड़बड़ तो नहीं है ?”

“दार जी सब सँभाल लेंगे।”

“पर वे तो गुण्डे से लगते हैं जो कार में गुजर रहे थे।”

“सब ऐसे ही होते हैं”, उसने बेध्यान में कहा। “चल हम पीछे गप्पे मारते हैं।”

मैं थोड़ा-सा घबरा रहा था।

“तू क्यों सूख रहा है”, उसने मुझे झिड़का।

“अरे यार इन गुण्डों से भगवान दूर ही रखे। पर ये हैं कौन ?”

“तुम्हें बताया था ना। कैथल में एक लफड़ा हो गया था।” पलटू बोला।

“मुझे याद नहीं”, मैंने उत्तर दिया।

“फ़िकर न कर। बिल्कुल भी नहीं”, उसने जोर देकर कहा।

“क्या... क्या फ़िकर न करूँ”, अपनी घबराहट छिपाने के लिए मैंने कहा।

“बस, इतना ही मान”, वह भी कुछ खुलकर नहीं बोल रहा था।

हम बाहर बैठे थे कि मुझे लगा पलटू किसी संगीन उलझन में फँसा है।

“आजकल किसी पर भी भरोसा करना कठिन है”, अचानक पलटू बोला। “अरे मैं इसलिए कह रहा हूँ कि दुनिया ही ऐसी हो गई है।”

“मैं कुछ समझा नहीं?” मैंने उससे कहा, “तू मुझे बिना झिझके, बिना रुके खुल कर बता तो शायद मैं किसी तरह की जुगत पेश करूँ। आखिर आदमी-ही-आदमी के काम आता है।”

अचानक वह आवेश में आया और मेरे दोनों कंधे झिंझोड़ कर बोला, “मैं यह सच पैदा होने के बाद से ही जानने लगा था।”

ढाबे के पीछे पलटू और मैं ऐसे बैठे थे जैसे छुपकर बैठे हों। एकदम अप्राकृतिक रूप से।

“हाँ तो।” पलटू कुछ कहते-कहते रुक गया। “तुम अपने होस्टल चले जाओगे तो मैं अकेला रह जाऊँगा।”

“अरे यार -- इतने साल बाद हम मिले हैं”, मैंने कहना चाहा कि तब भी तो इस बीच के वक़्त में हम अलग ही रहे हैं।

“वो तो है”, इतना बोलकर वह अपनी अंगुलियों से गिनने लगा। “बीस बरस तो बीत ही गए होंगे”, उसने अपने हिसाब से अनुमान लगाया।

“शायद”, मैंने उसे टोका।

“नहीं यार इसी दौर की गैर-हाजिरी दिखाई देती है।”

“गैर-हाजिरी का क्या मतलब?”

“अरे हम दोनों साथ-साथ नहीं थे।”

“तो क्या?”

“तो गैर-हाजिरी थे ना।”

“वक्त तो बीतता गया।”

“काम भी होते गए होंगे।”

“न... न...। इस पर सोचना पड़ेगा।”

अचानक तभी ढाबे से कुछ आवाज़ें सुनाई देने लगीं थीं। आवाज़ों के सुर ऊँचे ऊँचे थे। इतने ऊँचे कि आवाज़ों का शोर हम तक पहुँच रहा था। उस वक्त मैंने देखा कि पलटू का चेहरा कुछ बुझ-सा गया था। अब उसमें वैसी ताज़गी की चमक नहीं थी।

कुछ मेरा वहम भी तो हो सकता है? मैंने खुद से ही संवाद जारी कर दिया। अब ढाबे के उस पिछवाड़े हम तीन लोग हो गए थे।

“हाँ - तो...।” मैं खुद से सवाल पूछ ही रहा था कि पलटू ने मेरी तरफ हैरानी से देखा।

वह हैरान था। “हाँ -- मैं ये क्या देख रहा हूँ। अरे गप्पू तू किससे बातें कर रहा है?” वह ऊँची आवाज़ों के उस माहौल में बोला। “अबे...” वह बोलकर चुप हुआ ही था कि बीच के रास्तों से सरदार जी और सरदारनी एकदम पीछे आ गए।

“अरे तुम लोग क्यों जोर-जोर से बोल रहे थे?” सरदार जी ने पूछा।

“हम”, उन्हें देखते ही उत्तर देने के लिए मैं आगे आया। “हम तो खामोश बैठे हैं।” मैंने ज़ोर देकर कहा।

“नहीं बे।” पलटू ने जवाब दिया। “बात ये है कि गप्पू का दिमाग भी चल गया है।”

“चुप कर”, मैंने कहा, “बड़ा आया डॉक्टर कहीं का। अब मैं तो खुद से ही बतिया रहा था।”

“देखो दार जी देखो। ये खुद कबूल कर रहा है कि खुद से बतिया रहा था।”

“की होया काका?” सरदारनी की आवाज़ सुरीली थी। सीधे दिल के बीच प्रवेश करने वाली।

“बात ये है कि मैं कुछ दिमागी रूप से थक गया था। शायद ऐसे मौकों पर जोर-जोर से बोलना थकान दूर कर देता है।”

“अरे तुम लोग तो अभी बहुत छोटे हो। किस बात की चिंता... किस बात की थकान?” सरदारनी ने कहा। “खूब खाओ पीओ और हँसदे रओ।”

“तुम्हारी माँ ठीक कहती है”, सरदार जी अपनी पगड़ ठीक करते हुए बोले।

“वो...” पलटू ने कहा तो सरदारनी लपक कर बोली। तेरे बाऊजी ने मामला सुलझा दिया। अब चिंता करने की जरूरत नहीं है। सरदारनी ने बहुत थोड़े शब्दों में सारे मामले को इशारों-इशारों में निपटा दिया।

मैं भौंचक खड़ा था। मुझे मामले का कुछ पता नहीं था।

“ओय मैं तो भूल ही गया”, सरदार जी बोले, “आज मोगा... वाले सरदार जी आ रहे हैं। साथ में उनकी लड़कियाँ भी होंगी।” उन्होंने खबर दी।

“अरे आपने पहले बताया ही नहीं”, सरदारनी ने आश्चर्य व्यक्त किया।

“ओ, मैं भूल गया था। एक ट्रक ड्राइवर ने संदेश दिया था कि वे अपनी गाड़ी से बच्चियों के साथ मार्कण्डा पहुँचेंगे और रात में यहीं ठहरेंगे।”

“सो तो ठीक है। पर कुछ इंतज़ाम तो करना पड़ेगा न?”

“सो तो आपका काम है।”

हम दोनों हैरान सब कुछ सुन रहे थे। पलटू को मैंने थोड़ा खुश होते देखा तो मुझे संदेश आता दीखा कि कहीं कोई घपला ज़रूर है क्योंकि उसने लड़कियों का शब्द सुनकर कुछ भी टिप्पणी नहीं की -- न कोई विशेष उत्साह दिखाया।

थोड़ा एकान्त हुआ तो मैंने उसे छेड़ा -- “थोड़ा दाल में काला ज़रूर है।”

“अरे दाल में हमेशा ही काला देखता रहेगा”, उसने नहले-पर-दहला मारा। असल में उसके पास बड़ी जीवंत भाषा थी। मेरे आकलन में वह स्रैण भाषा थी जिसकी द्विअर्थी या बहुअर्थी ताकत कुछ देर बाद खुलती थी।

“भई देखने पर तो तड़के में जली चीज़ें ही दिखाई देती हैं न ?” मैंने अपनी बुद्धिमानी से चालाकी भरा संवाद रचा।

“रहने दे। मत देख न फिर”

“अरे बाहर की आँख बंद कर दूँ तो फिर भीतर दिखाई देने लगता है न ?”

“ये हुई न बात। तो काका फिर आँखें बंद करके ही रहना”, वह चहका।

मैं थोड़ा हैरान था। अभी कुछ पल पहले हम एक सदमे के नजदीक से गुजर रहे थे और अब।

“चलो... चलो...” तभी सिंगाड़ा सिंह, सरदार जी का सेवक हमें हाँक कर बाहर ले चला।

“कहाँ ले जा रहा है ?” पलटू ने कहा।

“अजी आप खुद देख लो ना ?” वह आँख मटकाते बोला, “चलो न छेती।”

“अबे कुछ बक तो सही।” पलटू ने उसे डाँटा।

“बस जरा इधर की कुर्सी मेजें वहाँ करनी हैं।”

“क्यों क्यों”,

“ओ जी सरदार जी तुसी चुप रहो ना। जरा मेहमानों के लिए खास इंतज़ाम करना है।” सिंगाड़े के पीछे ढाबे के दो-तीन लोग और आ धमके। और उन्होंने वहाँ से चीज़ें हटानी शुरू कीं।

कुछ पल में ही उन लोगों ने बाहर की खुली जगह में कुछ कनातें लगा दी थीं और फर्श पर बलिक कहें कि सूखी घास पर कुछ कालीन बिछा दिए थे।

“पलटू ये तो खास ही इंतज़ाम हो रहा है”, मैंने सोचा मेरे उकसाने से पलटू पलट कर कुछ बातें ज़रूर उगल देगा पर वह पक्की चमड़ी का था। झूठ-मूठ अपने चेहरे से अज्ञान का मुखौटा जड़े हुए

था। मैंने अपने आप से पूछना जारी किया। आखिर इतनी जल्दी में एक ही आदमी की तरह-तरह की तस्वीरें देख रहा था।

जाने क्यों मेरी आँखों का संदेह मेरी हल्की-सी मुस्कान में लिपट आया। पलटू ने मुझे देखा तो खुद को रोका नहीं।

“गप्पू...”, वह संबोधन के बाद रुक-सा गया। “तेरे मन में कुछ है ज़रूर।”

“क्यों नहीं। यार मुझे यह शाम कुछ खास लग रही है।”

“तेरा वहम है”, वह बोला।

“अच्छा ऐसा करते हैं हम थोड़ी देर के लिए अपने कमरे में चलते हैं। वहीं गप्पे हाँकेंगे।”

“ठीक”, वह उठ खड़ा हुआ और मैं उसके पीछे लग गया पर उसके कमरे में आकर देखा तो वहाँ भी नज़ारा बदला हुआ था। कमरे में सरदारजी उसे संवार रही थी।

“आओ बच्चो”, उनकी ममता भरी वाणी से सकून मिला -- मेहमान आ रहे हैं ना। घर ठीक ही रखना चाहिए। पलटू तो स्टार्ट कर, मेरे लिए दूसरी तरफ का दरवाजा खोल दिया।

“गप्पू बेटा। जल्दी आ जाना”, सरदार जी ने गप्पू को भी हिदायत दे डाली।

“जी।”

और वे दोनों मार्कण्डा कस्बे की दुकानों की ओर चल बढ़े। रास्ते में सड़कों की मरम्मत के कामों की वजह से जगह-जगह खुदाई हुई थी।

“अपणे परदेस में यही खूबी है। जब जहाँ जाओ सड़क खुदी मिलेगी। कभी सड़क चौड़ी करने की तैयारी है तो कभी रोड़ी बिछने की। कभी पानी का पाइप बिछेगा तो ज़्यादातर कुछ ही महीने बाद बिजली की लाइन बदलेगी। एक आदमी तो इसी को देखते बुढ़ा हो जाता है।” पलटू यह कह कर हँसा।

“अरे कुछ तफसील से बता ये तेरे गाँव के लोग क्यों आ रहे हैं।”

“मेरे गाँव के...” यह कह कर पलटू थोड़ी देर के लिए कहीं और पहुँच गया फिर सँभला, बोला, “हमारे गाँव के नम्बरदार आ रहे हैं। दार जी के बहुत घने रिश्ते हैं उनसे। और सबसे बड़ी बात ये है कि मोगे की ज़मीन की देखभाल भी वे ही करते हैं।”

“तब तो अच्छी बात है कि अपने घने लोग ही आ रहे हैं।”

“पर यार एक लफड़ा तो टला। वो कैथल वाले बदमाश। लेकिन मोगे में भी तो ऐसे लोग हैं।”

“मैं कुछ समझा नहीं।” मैंने कहा।

“कोई नी... बाद में बात करेंगे। अब दुकान आ गई है। पहले सामान ले लें।”

हम दुकान के बाहर कार खड़ी कर दुकान के भीतर चले गए। अपनी सारी चीजें बिखेर के रख देता है।”

“वैसे ही ठीक कहती हैं माँ”, पलटू ने कहा। “गप्पू के दिल में शक है कि आज माँ कुछ खास कर रही है”, कुर्सी पर बैठते ही वह बोला।

“खास ही तो है”, माँ ने समर्थन किया। “अरे आपने गाँव के लोग आ रहे हैं तो... अच्छा तू”, माँ ने पलटू की ओर देख कर कहा -- “अपनी पगड़ी ठीक कर। बड़ों के सामने आदर से जाना चाहिए। गुरु महाराज की मरजादा का भी ध्यान रखना पड़ता है। वाहे गुरु खैर करीं।”

“अच्छा ऐसा कर थोड़ा पीण पूण का भी इंतज़ाम कर लेना। पता नहीं सरदार जी माँग बैठें।”

पलटू ने मुझे आँख मारी, “बेटे गप्पू तेरा तो काम हुआ।”

“क्यों। अबे तू भी शामिल हो जाइयो।”

“मुश्किल है यार। खैर... हम दोनों सूफी रहेंगे। दार जी को भी अच्छा लगेगा।”

“जो तेरी मरजी।”

“कहीं सैर तो नहीं करनी।”

“कहीं यार। घर ही ठीक”, गप्पू ने उत्तर दिया।

“अब चल न...। माँ का हुक्म तो मानना ही पड़ेगा। कुछ चीजें लेने के लिए चलना है।

“चल जैसी तरी मरजी”

“इसमें मरजी क्या ?”

हम दोनों बाहर निकलें तो सरदार जी बाहर ही खड़े थे। वे इंतज़ाम का जायजा ले रहे थे। ढाबे को साफ-सुथरा कर पास की झाड़ियों को भी ठीक करने के लिए लोगों को लगाया हुआ था।

“कित्थे चलयो”, सरदार जी ने पूछा।

“कुछ सामान लेना है।”

“ठीक है। पर छेती लौटना। और कित्थे जाण दी कोई लोड़ नहीं। समझे।” उनके समझे पर जोर था। और पूरे वाक्य में वही शब्द महत्वपूर्ण था।

“जी”, पलटू ने इतना ही कहा। और कार घुसे तो छोटी-सी दुकान होने पर भी वहाँ खासी भीड़ थी।

“पलटू साहब”, पलटू उस ओर बढ़ा और उससे गले लिपट गया। “ये परताप है। सरदार परताप सिंह। और परतापे ये रहा मेरा बचपन का भाई। यहीं अंबाले में पढ़ता है।”

परताप ने झुककर अभिवादन किया। “अपने शहर में आपका स्वागत है जी”, वह पंजाबी में बोला पर फिर एकदम हिंदी में बात करने लगा।

“परताप और मैं दोनों मोगा में पढ़े हुए हैं।” पलटू ने मेरी ओर देखते हुए कहा, “परतापे आज नम्बरदार जी आ रहे हैं।”

“तो तू इसीलिए इस तरफ आया है ?”

“इंतज़ाम के लिए।”

“और कौन है साथ में।”

“कई लोग होंगे।”

“और तेरी छमक छल्लो।”

“मुझे तो पता नहीं पर घर के कई लोग आ रहे हैं तो वे भी होगी।”

“बस बेटा अब तो शैनाईयाँ बजवा भी दे।”

पलटू झेंपा।

“माफ करना जी। हमारे बीच ज़रा ज़्यादा खुलापन है। पलटू के बच्चे को मेरे बारे में सब कुछ पता है। पर मैं गरीब आदमी इसकी अंदर की...”

“अब ज़्यादा गप्पें ना मार। हमें सामान दे। और हम रुखसती लें।”

“अब बेटा तू कहीं रुकेगा भी नहीं।” उसने व्यंग्य किया।

“अच्छा तू भी आ जाना शाम को। बीजी को भी लेता आ।”

“ले पूरी बरात बुला रहा है तू” यह कह कर परताप अंदर की तरफ चला गया। “खास चीज़ खोजता हूँ ज़रा।”

वह थोड़ी ही देर में दो बोतलें ले कर आ गया।

“ले...” उसने कहा, “वोय सीधे स्मार्टलैण्ड से आ रही हैं।” कहते-कहते उसने आँख मार दी।

“अच्छा तू तो आ जा।”

“अबे तेरी उसको मिलने कुछ सुभे आ जाऊँगा।”

थोड़ी देर आपस में नॉक-झोंककर हम लोग बाहर आए और ढाबे की ओर चल दिए।

ढाबे पर रौनक थी। कुछ बत्तियाँ ज़्यादा जला दी गई थीं और सफाई के कारण भी दूर-दूर तक अब वैसी साफ जगह की कल्पना नहीं की जा सकती थी।

हम पहुँचे तो अभी-अभी एक ट्रक भी वहाँ पहुँचा था। हमेशा शामों को दूर-दराज से आने वाले ट्रक खड़े हो जाते और थकान भरी यात्राओं के बाद अपने हाथ-पाँव सीधे करने के लिए लोग रुक जाते। ट्रक से सिर्फ़ तीन लोग ही उतरे थे।

उनकी सेवा के लिए ढाबे के लोग तैयार थे। उतरते ही उनके सामने बेंचों की मेजों पर पानी के गिलास रख दिए गए थे।

“भई सरदार जी हैं क्या ?” ट्रक ड्राइवर ने पूछा।

“हाँ जी, भीतर हैं।”

“ऐसा कर अंदर खबर कर कि मेहरबान सिंह का ट्रक आया है। कुछ सामान यहीं छोड़ कर हम सहारनपुर चले जायेंगे। जा बच्चे जल्दी खबर कर दो।”

ढाबे का लड़का सीधे खबर देने चला गया। तभी पलटू भी उतर कर ढाबे में आया।

“ओय सरदार पलटन दास”, ट्रक ड्राइवर ने उसकी तरफ लपकते कहा, “अरे चाचा को भूल गया।”

“सतश्री अकाल जी”, पलटू ने कहा और उनके पाँव छू लिए।

“खुश रह पुत्तर”, वह कह ही रहा था कि अंदर से सरदार जी आकर मेहरबान सिंह से लिपट गए।

“तूने चंगा किया आज आ गया। आज मेरे गाँव के लोग भी आ रहे हैं।”

“बहुत चंगी बात है। पर यार मुझे जरा छेती ही सहारनपुर पहुँचना है। मैं पेहवे के रास्ते सहारनपुर जाता हूँ कल लौट आऊँगा। थोड़ा ज़रूरी सामान यहाँ छोड़ दूँगा -- उसे लौटती बेर दिल्ली ले जाना है।”

“जो तेरी मर्जी। जा पलटू तू और गप्पू चाचे की मदद करो। मैं जरा दूसरे काम देख आता हूँ।”

“ओ जी वो तो मैं खुद ही कर लूँगा।”

“नहीं जी नहीं। ये दो जवान जल्दी ही माल उतार देंगे। इन्हें भी तो काम आना चाहिए।” सरदार जी ने कहा।

हम दोनों मेहरबान सिंह के ट्रक की ओर बढ़े।

“कुछ गत्तों के डिब्बे उतारने हैं। वे दिल्ली जायेंगे।” मेहरबान सिंह ने कहा। “बस जगह ही घेरते हैं। वजन ज़्यादा नहीं है।”

लगभग दस से कुछ ज़्यादा ये कम वजन के होते हुए भी आकार में बड़े थे, हम लोगों ने जल्दी उतार दिए।

सरदार मेहरबान सिंह ने अपने ड्राइवर को जल्दी बुलाया और नमस्कार कर गाड़ी में चढ़कर जल्दी मचाने के साथ चल दिया।

“चाचे को इतनी जल्दी थी कि खुद की चाय भी चैन से नहीं पी सका।” पलटू ने कहा।

“काम का रोग ऐसा ही होता है।” मैंने सहज उत्तर दिया पर पलटू ने उस वाक्य की व्यंजना निकाल ली।

“क्या मतलब ? कहीं काम से तेरी मुराद सेक्स तो नहीं है ?”

यह कहकर पलटू ने आँख मारते हुए कहा, “मेहरबान सिंह चाचे की मेहरबानियों के किस्से सुनना किसी दिन तो मजा आ जाएगा।

“अभी सुनादे न यार” मैंने कहा।

“अभी मौका नहीं।”

“कब निकालेगा मौका। जब तू खुद उस में रम जाएगा ?”

मैं कह कर कुछ घबराया कहीं यह मेरे कहे का कोई दूसरा मतलब न निकाल दे। पर हुआ ऐसे ही।

“भई बात ये है दार जी को तो पता नहीं। पर सहारनपुर का रेड लाइट एरिया बहुत बदनाम है।”

“ये जगहें तो बदनामी की हैं। नेकनामी के लिए तो परिवार हैं।”

“चाचे ने नेकनामी के लिए जालंधर में घर बनाया हुआ है। और बदनामी के लिए वो सहारनपुर, दिल्ली से बनारस से कलकत्ता हो आता है।”

“तुम तो ऐसे कह रहे हो जैसे उसके साथ होकर आए हो ?” मुझसे न रहा गया। आखिर में वह बोल ही गया जो काफी कड़वा था।

“ऐसे ही समझो।”

“जरा खोल कर बताओ ना।”

बातें करते-करते हम लोग ढाबे के दक्षिणी दरवाज़े के पास पहुँचे ही थे कि मेहमान आ पहुँचे।

“चलो -- बाकी बातें बाद में...” पलटू ने कहा।

“यार आज की बातें बेहद संगीन हैं।”

“तो ठीक है जब भी वक़्त मिलेगा।”

“पलटू... पलटू”, तभी सरदारनी की आवाज़ सुनाई दी।

“आया माँ”, इस बीच पलटू ने मेरा हाथ कस कर पकड़ लिया और कहा, “साथ ही रहेंगे।”

मेहमानों में दार जी के गाँव के दो परिवार आए हुए थे। और साथ में ढेर सारी लड़कियाँ। पलटू और मैं उन लोगों के लिए नये नहीं थे क्योंकि लड़कियों ने सामूहिक-सी आवाज़ में कहा, “लो, ये रहा पलटन का सिपाही गप्पू।”

अरे एकदम अनौपचारिक-सा भाव।

पलटू से अपने दोनों चाचा-चाचियों के पाँव छुए। उसके बाद मुझे भी उनके पाँव छूने पड़े। अब लड़कियों की बारी थी। हम उम्र लड़कियाँ विनोदी स्वभाव की थीं।

“आ भई पलटू चल पैरी पैणी कर”, सबसे बड़ी बोली और सब हँसने लगीं।

तुम लोग आपस में सुलटते रहो यह कह कर सरदारनी चाचियों और चाचों को लेकर अंदर चली गई।

“ओय हनू अपणा ना तां दस्सो”

“वाह भई की पया ना विच” वही बड़ी पलटू का हाथ पकड़ बोली, “तू ने झुक के परनाम नहीं किया”,

“बे बे तू बे बी बणी रै”, और बे सब फिर साथ ही लगी कुर्सियों पर बैठ गई।

“यार गप्पू इन पाँचों के साथ तो हमारा निपटारा कठिन है चलो पहले तुम्हें इनके नाम बता दूँ” उसने फिर सबसे सुंदर को आगे किया। “ये डिम्पी है।”

चारों हँसने लगी। डिम्पी धीरे-धीरे अपनी सीट से उठकर पलटू के पास पहुँची।

उसका पहुँचना बहुत मजेदार था। वह पूरे नाटकीय अंदाज़ में आई और उसने पलटू का हाथ पकड़ा।

“वाह पलटन आज आप एक सिपाही की तरह बर्ताव कर रहे हैं”, उसने अपना हाथ ऊँचा किया, “ओय रब्बा, अल्लाह आप जहाँ भी रहते हों। वहाँ से किरपा बरसाएँ और पलटन दास सिंह को एक पलटन में बदल दें।” उसने दो कदम पीछे होकर आसमान की तरफ ताका -

“गवाह रहियो आसमान। अपना पलटन सिपाही नहीं मुकम्मिल फौज है...”

सारी लड़कियों ने तालियाँ बजाई।

“तू तो एकदम एक्टर है यार... लाजबाव एक्टर”, डिम्पल ने उसका हाथ पकड़ लिया --

“हाय ! हाथ पकड़ कर अब छोड़ना नहीं।”

“अरे... अरे... हाथ तो तूने पकड़ा हुआ है।”

“तभी तो कहे हूँ हाथ छोड़ना नहीं।”

“अरे भाई गप्पू परिचय मिल गया न ?”

“एकदम। डिम्पल जी आपकी आवाज़ बहुत अच्छी है।”

“ओय ओय ये तो पाँचवा छोकरा है जो हमारी छोरी की तारीफ करे है।”

सारे हँसते-हँसते अपनी कुर्सियाँ खींच कर करीब आ गई।

अब भई अपना अपना परिचय खुद दो।

“लो जी हाजिर हूँ कनीज को सिम्पल कहते हैं। अंग्रेज़ी में। और हिन्दुस्तानी में सरला।”

सिम्पल ने भी एकदम ड्रामाई अंदाज़े अपने आपको प्रस्तुत किया और गप्पू के सामने आ खड़ी हुई, “जनाब आपके बारे में इतनी बातें सुन चुके हैं कि यकीन नहीं होता कि आप इतने बड़े हो गए होंगे।” सारी लड़कियाँ हँसने लगीं।

“अच्छा अब नाटक छोड़ो।” पलटू ने कहा, काम की बातें हो जाएँ। कल सबेरे कहीं घूमने चला जाए।”

सबने तालियाँ बजाईं।

“ओ भई कम दियाँ गल्लां करो”, सिम्पल ने प्रस्ताव रखा।

“कौन सा काम ?”

“काम छोड़ कर तो हम यहाँ आए हैं।”

“हाँ भई हँ।”

चलो कहीं घूम आएँ।”

“अँधरे। कुछ शर्म करो। अभी तो बात हुई है कि कल।”

“सबेरे के लिए पक्का।”

“सब लोग मिलकर।”

“हाँ भाई मिलकर।”

बातचीत का सिलसिला खत्म होने को ही नहीं आता था। हरेक अपनी बात आगे रखने के चक्कर में तरह-तरह से आगे आकर कुछ नये से वाक्य बोल पड़ता फिर जिसके जी में आए वो उसका उत्तर दे।

तभी अंदर से सबके लिए बुलावा आ गया।

“अरे भाई तुम लोग बातें ही कर रहे थे।” सरदार जी ने कहा, “बच्चो, कुछ खाओ पीओ।”

“और मोटे हो जाओ”, सिम्पल ने वाक्य अपनी बात से पूरा किया।

“ओय चाचे की बात सुनो”, सरदार जी और दोनों चाचे गिलास उठाये मेज के गिर्द ही खड़े थे।

“भई गल ए है कि अब पलटू का और गप्पू का जमाना है तो आज इनकी ट्रेनिंग कर डालते हैं”, छोटे चाचे ने कहा, और अपना गिलास पलटू के ओठों से जबरन लगा दिया।

“यार जोरदार घुट” चाचे ने कहा।

“दार जी”,

“ओय दार जी के पुत्तर घुट भर...” चाचे ने उसके ओठों के भीतर घूट भरने की जिद की।

सरदार जी ने अपना गिलास गप्पू के हाथों में पकड़ा दिया। “चाचे का हुक्म मानो जी।”

उन्हें पता नहीं था शराब पीने में हम पारंगत पंडित थे। पर दिखाने के लिए यह लाजिमी था।

वह शाम हमारे बपतिस्मा की थी।

घरवालों ने हमें अपने बड़ों के खांचें में दाखिल कर लिया था।

हम लोगों ने कुछ ही घूंट लिए होंगे। उस बीच सरदार जी और उनके गाँव वाले दुन्न हो गए थे।

बपतिस्मा की उस रात कुछ ऐसी घटनाएँ भी घटीं कि हम एकदम प्रोढ़ हो गए।

लड़कियों ने हमें अपने गीतों और पंजाबी नृत्यों से मोहित तो किया ही -- साथ ही, जो घटनाएँ घट रही थीं लगता था भविष्य की कुछ-कुछ पूर्व सूचनाएँ थीं।

हम दोनों मोगा पहुँचे तो सरदार जी के खेत वाले घर में हमें ठहराने का बंदोबस्त छोटे हज़ूर सिंह ने इतनी फुर्ती से किया कि हमें खुद हैरान होना पड़ा।

“दिन में गुरुद्वारे में लंगर छकेंगे”, हज़ूर सिंह ने कहा, “और फिर खेतों की ओर एक चक्कर लगा आयेगे। आज पानी की बारी भी हमारी है।”

“फिर तो बड़ा मज़ा आयेगा”, पलटू बोला।

“पर यार रात में तुम दोनों को ही वहाँ अकेला रहना पड़ेगा क्योंकि मुझे कल जम्मू रहना है। मैं रात की गाड़ी से चला जाऊँगा।”

“वहाँ बड़े सरदार जी का इंतज़ाम है। फिकर न करा।”

हम बातें कर ही रहे थे न जाने कहाँ से सिम्पल दिखाई पड़ी। उसने चट से अभिवादन किया --

“वीर जी आप”, वह बड़ी खुश लग रही थी।

“क्या हाल है?” मैंने रस्मी तौर पर पूछा।

“बस आप आ गए तो हाल-चाल ठीक ही समझो”, वह बोली, “मुझे आपसे काम भी हैं।”

“बता बता। जो होगा वो तो देखा ही जायेगा। तू पहले काम बता।”

“अरे आप अब आ गए। अब तो रात दिन मिलना होगा। पहले आप मेरी बीजी और मेरे बाऊ जी से मिलेंगे। वो अभी यहीं आने वाले हैं।”

चल अच्छा हुआ तेरे दर्शन हो गए।”

“चाचा हूरे सिंह ने बताया तो था। पर पलटन वीर जी का ही नाम लिया था।”

“अब आ गए ना।”

इतने में और लोग उस फार्म हाउस में आते दिखाई दिए तो सिम्पल बोली, “लो आपको अपनी बीजी बाऊ जी से मिलाती हूँ।”

उसके माता-पिता पास आए तो हम थोड़ा आगे बढ़े।

सिम्पल की माँ अभी काफी जवान लग रही थी। वे सीधे मेरी ओर आईं और मेरे सिर पर हाथ रख बोली, “खुश रहो बेटे।”

“अरे आपने गप्पू भैया को पहचान लिया?” सिम्पल बोली।

“और क्या। इतनी दफे बातें हुई हैं कि... वो तो मैं शाहाबाद जाती तो वहीं मिल लेती। पर यहाँ भी काम था।”

सिम्पल के पिता फौज से रिटायर हुए थे कि उन्हें जालंधर की एक कंपनी ने अपना सिक्योरिटी हेड बना दिया था। वे ज़्यादातर जालंधर में ही रहते थे।

“अजी काम क्या?” उसके पिता बोले, “दिन भर जालंधर बिताता हूँ अगर शाम को वहाँ काम न हुआ तो फिर गाँव पहुँच जाता हूँ। अब आप लोग कुछ दिन यहाँ रहो तो मैं रोज शाम को आ जाया करूँ।”

“तो आज चाचा जी आप हमारे साथ ही रहें खेत पर”,

“ना भाई ना। तुम लोग जवान लोग हो रात भर गप्पें लगाते जागते रहोगे।”

“लो आप भी तो जागते थे जब हम पानी की बारियों में खेतों में रहते थे।”

सिम्पल खिलखिला कर हँस पड़ी। “मम्मी पापा पहली दफे वहीं मिले थे।”

“और क्या”, उसकी मम्मी ने शरमाते हुए कहा, “रातभर सर्दियों में आग तापते और गीत गाते सुनते रहते।”

“क्या दिन थे?” उसके पिता पुराने दिनों में जैसे लौट रहे थे। पल भर में वहाँ बहुत से लोग जमा हो गए।

“लो भई। लौट आए चैपाल के दिन”, कोई बोला। और जैसे पलक झपकते ही जादू हुआ हो न जाने कहाँ से दनादन प्लास्टिक की कुर्सियाँ आ गईं। वहीं से मेज और न जाने कहाँ से सबके लिए बड़े बड़े गिलासों में गरमागरम चाय या दूध और कितने ही दोने जलेबियों के...

“यह क्या हो रहा है”, मैं सोच ही रहा था कि सिम्पल ने मुझे इशारा किया और किनारे ले जाकर बताया कि आज शाम का खाना उन्हीं के घर से बनकर खेतों में पहुँचेगा और तभी होगी बल्ले... बल्ले...।

गंगा प्रसाद विमल

112, साउथ पार्क



कालका जी

नई दिल्ली - 110 019

किपलिंग के शहर में

वह सुबह का वक्त ही था।

कोई था जो जोरों से दरवाज़ा पीटे जा रहा था। उसकी बेसब्री उसके गाली भरे वाक्यांशों से भी झलक रही थी। होस्टल के कई कमरों से छात्र बाहर निकल आए थे और यह जानने के लिए ठिठके हुए थे कि आखिर यह हो क्या रहा है? माजरा क्या है?

वह कमरा सबसे सीनियर व्यक्ति का था। जो पूरे छात्रावास का नायक भी था। उसकी सरकारी स्थिति उसे 'प्रीफेक्ट' तय करती थी। यानी वह उस छोटे से समुदाय का सर्व स्वीकृत व्यक्ति था।

छात्रावास के शेष लोग अवाक् थे। विस्मित। और जैसा ऐसे मौकों पर होता है वे एकदम भड़कने ही वाले थे क्योंकि इशारों-इशारों में उन्होंने बाहरी तत्व से निपटने की एक सांकेतिक सहमति जुटा ली थी।

वक्त सुबह का था।

सुबह पीपल के हरे भरे कोमल पत्तों पर रोशनी फिसल-फिसल कर अपनी चमक बिखेर रही थी। ताज़गी का ताज़ा झोंका पक्षियों की मनोरम कलकल से चारों तरफ बिखर रहा था।

और यहाँ। कोई उज्जड़-सा नौजवान चुनिन्दा गालियों से सुबह का स्वागत कर रहा था।

भीतर से 'प्रीफेक्ट' साहब बाहर आ ही नहीं रहे थे। मुमकिन है अपने प्रसाधन कक्ष में हों। बस उस छात्रावास में वार्डन और प्रीफेक्ट के कमरों में प्रसाधन कक्ष की व्यवस्था थी। बाकी सामुदायिक प्रसाधन कक्षों का इस्तेमाल करते थे। या मुमकिन है वे भीतर अपनी पोशाक बदल रहे हों। जो भी हो। बाहर की बेचैनी बढ़ रही थी। लोग बीच में आते कि तभी वह नौजवान बहुत गुस्से में दूसरे लोगों को सम्बोधित हुआ। वह भी माँ-बैन की गालियों की छौंक के साथ -- "सालों तमाशबीनों... तुम्हारी तो... अबे साला गप्पू हरामी अभी तक सोया हुआ है?" फिर उसने बाहर जमा होते छात्रों को देखा तो ज़्यादा भड़क कर बोला, "उठता ही नहीं... तेरी तो..." यह कहते हुए उसने ढीले पैजामे के पैताने कसे और एक जोर दार लात दरवाज़े पर मारी कि दरवाज़ा स्वतः खुला और प्रीफेक्ट महोदय अपनी सुबह की पोशाक में बाहर निकलते नज़र आए।

उन्होंने पहले भीड़ को देखा... फिर उस नौजवान की ओर बढ़ते हुए और बोले, "कहो... क्या बात है?"

उसने एक पाँव से जूता निकाल कर हाथ में लिया -- "गप्पू के बच्चे... बात बताऊँ?"

"अरे भई...", प्रीफेक्ट ने सोचा उसका घर में माता-पिता द्वारा इस्तेमाल नाम एक अजनबी ले रहा है तो जरूर कोई आत्मीय होगा।" भई आओ अंदर बैठो।"

बाहर छात्रावास के सभी साथी नौजवान की हरकत देख, जूता उठा कर बात करने का रवैय्या देख न सिर्फ़ हैरान थे बल्कि उत्तेजित भी थे। उनके ही छात्रावास में बाहरी तत्व उनके नायक का अपमान कर रहा हो तो कैसा लगेगा?

"अपने जानकार हैं", प्रीफेक्ट ने बचाव की मुद्रा अपनाई और छात्रों को सम्बोधित करने की गरज से बोले। "आप लोग चले अपने-अपने कमरों में..." उसने बाकी लोगों को तितिर-वितितर होने की विनती जैसे ही की... कि नौजवान भड़क गया।

"तू मुझे पहचान... गप्पू के बच्चे वरना जूते खा... और देख तब तक जूते चलाना बंद नहीं होगा जब तक पहचानेगा नहीं।"

उसके अपनत्व भरे कथन ने आग में घी का काम किया। सारा छात्र समूह भड़क गया। उन्होंने एक घेरा बना डाला।

"बहुत हो गया", कोई बोला।

"रोको" -- "अरे उसे रोको", दो आवाज़ों ने कहा।

"प्रीफेक्ट साहब आप भीतर जाएँ।" एक मोटी आवाज़ आई। वह उस छात्रावास के पहलवान की थी जो दौड़ कर कहीं से डण्डा उठा लाया था। उसे मखौल-मखौल में पहलवान कहा जाता था। था वह एकदम सींकिया पहलवान। आवाज़ उसकी मोटी थी पर जिस्म एकदम पतला था।

"ओय..." पहलवान आगे आया। उसका डण्डा भी आगे आना लाजिमी था, "कौन है तू। हमारे होस्टल में तुझे आने किसने दिया?"

यह सवाल सुनते ही वो नौजवान कुछ ज़्यादा ही भड़क गया। उसने लड़कों के घेरे की परवाह नहीं की और सीधे पहलवान के डण्डे को दूसरे हाथ से जा पकड़ा। अब उसके एक हाथ में डण्डा था और दूसरे में जूता।

इसने इतनी जोर से डण्डा खींचा कि पहलवान हाथ के संतुलन से थामे डण्डे को सँभाल न पाया और एक चक्कर-सा खा कर नीचे गिर पड़ा।

दौड़ कर साथियों ने उसे उठाया।

"अब तो तुझे न छोड़ूंगा बेटे...", माँ-बहन की गालियाँ देते सींकिया पहलवान दहाड़ा।

दोस्तों ने बीच-बचाव किया।

नौजवान गुस्सैली आँखों से अभी भी देख रहा था और ज़्यादा चौकस था कि घेरे के नौजवानों से कैसे निपटे?

प्रीफेक्ट महोदय ने आगे बढ़ कर अपने उस दोस्त को गलबाहियों में लेने की कोशिश की तो उसके हाथ से डण्डा और जूता दोनों गिर गए और वह उसे देख मुस्कुराया तो प्रीफेक्ट महोदय बोले -- “अरे पलटू तू... तू साले कहाँ से मर गया यहाँ ?” सारे लोग भौंचक थे। वे दोनों एक दूसरे की बाहों में थे।

“अबे गप्पू”, उसने प्रीफेक्ट को सम्बोधित किया -- तो प्रीफेक्ट यानी गप्पू ने दोस्तों यानी होस्टल के साथियों को सम्बोधित किया - - “यह मेरे बचपन का साथी है। दर्जा दो तक हम साथ-साथ पढ़े थे। आओ, सब मिल कर यहीं बैठें।” गप्पू के इशारे से खुली जगह में आनन-फानन कुर्सियाँ बिछ गई और वातावरण एकदम दोस्ताना बन गया। कैन्टीन में काम करने वाले लड़के दौड़ कर मेजें उठा लाए थे। पल भर में माहौल बदल गया था।

साथ-साथ बैठे वे एक दूसरे से कद काठी शकलो सूरत में भी समान लगते थे -- इससे भी लोग चकित थे। किसी ने उनकी समानता का जिक्र किया तो गप्पू यानी प्रीफेक्ट समझाने लगा कि “हम लोग पहाड़ी हैं और पहाड़ियों की कद-काठी तो बराबर की होती है, उनकी चमड़ी उनका रंग भी सबका एक जैसा होता है फिर आवाज और उच्चारण अरे उसमें तो ग़ज़ब की समानता मिलती है।”

“कभी-कभी तो औरत मर्द भी एक जैसे होते हैं”, पलटू ने कहा तो सारी महफिल में हँसी के फौव्वारे फूट पड़े।

“यार मैं तो घबरा ही गया था।” पहलवान बोला तो किसी ने उसे डपटा -- “अबे होस्टल की नाक कटवा डाली तूने... साले डण्डा फिसल कर पलटू महोदय के हाथ में जा थमा...” बोलने वाला हँसने लगा, “क्या मजाइहिया दृश्य था...।”

पहलवान खिसियाते हुए बोला -- “बेटा डण्डा जगह न बदलता तो आज हमें दो दोस्तों के मिलन का मज़ा कैसे आता ?”

श्रीमान गप्पू अर्थात् प्रीफेक्ट जितने खुश आज नज़र आ रहे थे उतने तो उनके करीबी साथियों ने कभी न देखे होंगे ?

होस्टल के छोटे से लान में सुबह के वक़्त की वह चाय पार्टी आने-जाने वालों को भी मोह रही थी।

“कहीं पढा था इस शहर में विश्वविख्यात उपन्यास लेखक किपलिंग भी रहता था।” पलटू ने प्रश्नवाची संवाद प्रस्तुत किया।

“हाँ -- अरे ! कैन्टोनमेन्ट में... सभी चलो वह देखने।” गप्पू ने उत्तर दिया।

थोड़ी देर के लिए सभा बर्खास्त करने की तजवीज गप्पू ने दी और सब लोगों को कुछ देर बाद वहीं जमा होने का निश्चय सुनाया। फिर हम सब लोग कैन्टोनमेन्ट के उस इलाके में चलेंगे।

गप्पू और पलटू दोनों तैयार होने चले गए। कुछ-कुछ विचित्र-सी घटनात्मकता से दिन शुरू हुआ था। फिर वह एक छुट्टी का दिन था।

कॉलेज शुरू हुआ था। इसी कारण किसी को जल्दबाजी नहीं थी। होस्टल में भी एक किस्म की बेफिक्री थी।

परन्तु तभी गप्पू के दरवाज़े पर पंडित मोहन देव पंत ने दस्तक दी। वे गप्पू के परिचित थे और होस्टलवासी ही थे। वे असल में टिहरी के ही रहने वाले थे और गप्पू के घर के पड़ोस में ही उनका परिवार रहता था। अम्बाला में वे एक शोध परियोजना के सिलसिले में डटे हुए थे। उन्हें हिन्दी के अध्यक्ष डॉ संसार चन्द्र ने आमंत्रित किया हुआ था। सनातन धर्म कॉलेज चार चाँदों के कारण काफी बुलन्दी पर था -- यानी चार चान्दों की चाँदी का खजाना भी वही कॉलेज था। उसमें नम्बर दो थे ज्ञान चन्द्र जुनेजा। वे साईंस के अध्यापक थे और होस्टल के वार्डन। पंडित मोहन देव पंत उनकी भी जन्मपत्नी बाँचते थे और उनके भूत भविष्य की काफी दिलचस्प कथा बताते रहते थे।

ऐसे पंडित मोहन देव पंत का अपने भतीजे के कक्ष में आने का कोई प्रयोजन ज़रूर होगा। वे गप्पू के पिता के भी जानकार थे। असल में वे एक ऐसे व्यक्ति थे जो सबके संरक्षक थे... होस्टल की जिन्दगी में ऐसे संरक्षकों की ज़रूरत तब समझ पड़ती थी जब उनसे समस्याएँ सुलझती थीं। वे एक बड़े संस्कृतज्ञ तो थे ही हिन्दी के भी मर्मज्ञ थे और अक्सर उन्हें विद्यार्थी घेरे रहते थे। अम्बाला अभी पंजाब का हिस्सा था। संस्कृतज्ञों का वहाँ आदर होता था। पंडित मोहन देव पंत की काफी ख्याति थी और वे इस वक़्त ‘प्रीफेक्ट’ यानी अपने शहरवासी के दरवाज़े पर दस्तक दे रहे थे, दरवाज़े के कुछ ही नीचे एक सांकल-सी थी। पंडित जी ने जैसे ही सांकल खड़खड़ाई कि दरवाजा जैसे स्वाभाविक रूप से खुल गया। उसके खुलते ही जो आवाज़ हुई वह ध्यान खींचने वाली थी।

आवाज़ क्या थी बस चीं चीं और साथ में गप्पू के कपड़े पहने श्रीमान् पलटू जी बाहर निकल आए।

“माफ करें”, पंडित मोहन देव पंत बोले, “मैंने आपको पहले कहीं देखा नहीं।”

पंडित जी की पंडताऊ पोशाक देख पलटू ने सोचा कोई कर्मकाण्डी आ धमका बोला, “मुझे देख कर क्या करेगा। यहाँ कोई पूजा-पाठ करवाने वाला नहीं।”

“अबे पलटू वे मेरे चाचा हैं... चाचा -- बेटे उन्हें बिठा ले कमरे में।” गप्पू भीतर की ओर से बोला। वह शायद नहा रहा था।

“ओ बाप रे ! आईए चाचा जी... आइए...।”

पलटू कुछ बात करने ही वाला था कि तभी अधनंगा गप्पू भीतर आ गया।

“माफ करना चाचा जी।” गप्पू बोला -- “यह मेरा बालपन का दोस्त है। आज वर्षों बाद मिला है।”

“मैं पास ही के कस्बों में रहता हूँ। अखबारों में मैंने जैसे ही गप्पू का नाम पढ़ा तो मैं इस शहर में आने के लिए बेचैन हो गया।”

“अच्छा उठ अब चलते हैं -- ठीक याद है न..”

गप्पू... हमें सबसे पहले सिनेमा हाल देखना होगा...

“तो तुम लोग कहीं जा रहो हो ?” मोहन देव पंत जी ने पूछा।

“जी”, वह अपने कपड़े पहनते बोला -- “एक बहुत बड़े अंगरेजी लेखक यहाँ अम्बाला में रहते रहे हैं। उन्हीं के बारे में कुछ जानकारी लेने के लिए हम सब यानी होस्टल के बहुत से लोग वहाँ जा रहे हैं।”

“तो तुम रूडयार्ड किपलिंग की बात कर रहे हो।”

“जी... एकदम वही”, बीच में पलटू बोला -- “चाचा जी आप भी जानते हैं उसे। वह तो क्रिस्तान था। अंग्रेज़ी में लिखता था और आप संस्कृत के पंडित हैं एक विधर्मी...”

“देखो बेटा विद्या के क्षेत्र में कोई धर्मी-विधर्मी नहीं होता। वह तो एक बड़ा लेखक था। हमारे संस्कृत लेखकों की तरह बड़ा लेखक। मुझे तो उसे पढ़ने का भी सौभाग्य मिला था।”

“मैंने कुछ पढ़ा ही नहीं”, पलटू बोला -- “मैंने सिर्फ उसका नाम सुना था। वह भी उड़ते-उड़ते। उसकी किसी किताब के बारे में कुछ भी पता नहीं। मुझे तो चाचा जी अपने हिन्दुस्तानी लेखकों के बारे में भी पता नहीं। दार जी ने मुझे बुल्लेशाह के बारे में बताया था। मैंने कुछ गीत भी उसके सुने हैं।”

मोहन देव पंत उसकी बात ध्यान से सुन रहे थे। “तुमने पढ़ाई कहाँ तक की है।”

“आप मानें... मैं तो निपट निरक्षर हूँ”, बोलते हुए वह हँसा। “बस कुछ नागरी हरूफ पढ़ लेता हूँ और कुछ गुरुमुखी पढ़ लेता हूँ। अम्मी ने मुझे उर्दू भी बाँचनी सिखा दी थी। पर मेरा मन ही नहीं लगा।”

तब तक गप्पू पूरी तरह तैयार हो कर आ गया था, “मेरे कपड़े इसे फिट आ जाते हैं।” गप्पू बोला। अरे आपको मैं इस पलटू के बारे में बताना ही भूल गया। हम लोग दर्जा दो में अपनी रियासत में साथ-साथ पढ़ते थे।”

“अच्छा”, मोहन देव बोले, “पर कहाँ ?”

“जी वहीं नरेन्द्र नगर में...।”

“अच्छा अच्छा...। कौन था तब हेड मोस्टर ?”

“याद नहीं। सुनते हैं कोई अंग्रेज था।” पलटू बोला -- “अभी याद आ जाएगा नाम याद...”,

बाहर छोटे-छोटे पाप्लर के पेड़ों की कतारें सड़क के दोनों ओर इस तरह लहरा रही थीं मानो आने जाने वालों का स्वागत कर रही हों। पीछे की ओर सड़क के दोनों हिस्सों में बड़े पेड़ थे वहीं से ग्रैन्ट

ट्रंक रोड गुजरती थी। सीधे पेशावर से सुदूर कोलकत्ता तक। वृक्षों के दोनों भागों से उनके सिरे आपस में मिलते थे जैसे किसी सामूहिक प्रार्थना के लिए वे सिर जोड़कर खड़े हों। कुछ पेड़ों पर विचित्र से रंग के फूल उभरने लगे थे और कुछ पेड़ों पर नंगी हुई डालों से नये फूटने वाले फूल दिखाई देने लगे थे। हरे और रंग-बिरंगी आकृति के वे फूल मानो देवार्पण के लिए हड़बड़ी मचा रहे हों।

गप्पू ने अपने हाथ से बड़े फूलों के कुछ अंश जमीन से बटोरे। और उन्हें करीने से पेड़ों के पास ही सजा दिया।

“तुमने चाचा जी से झूठ क्यों कहा कि मैं निरक्षर हूँ।”

“अरे इतने बड़े विद्वान मोहन देव पंत के सामने तो मैं अभी पैदा ही नहीं हुआ।” वह कुछ विनोदी हो आया था, “अबे ज्ञान पढ़ने से थोड़े ही मिलता है और मुझे क्या देर लगेगी किसी वक्रत बता दूँगा कि दार जी ने मुझे मैट्रिक पास का सर्टिफिकेट दिला दिया था।”

“अब झूठ को सच करने की कला तू जाने ?”

“क्या मतलब ?”

“अरे यार लोग तरह-तरह की दुकानदारी करते हैं। किसी ने ‘सर्टिफिकेट’ बेचने का धंधा कर लिया। उसी में हमारे सरदार जी ने एक सर्टिफिकेट मेरे नाम का भी ले लिया।

“यह तो धोखा धड़ी है”

“है तो”

“इससे जल्दी झुटकारा पा”

“वही तो कर रहा हूँ अब।”

“बहुत अच्छी बात है। ऐसा ही होना चाहिए।”

देख गप्पू मुझे कोई प्रोफेसर तो बनना नहीं है बस।”

“मामला साफ रहना चाहिए। उससे संकट नहीं आते।”

“जब हम पढ़ते थे तब कोई सकलानी थे”, पलटू बोला, “अंगरेज शायद उससे भी पहले रहे होंगे।”

“अरे सकलानी जी को तो हम जानते थे।” पंडित मोहन देव पंत बोले, “संयोग ही है कि वे भी किपलिंग के चाहने वाले थे।”

“यह जानकर अच्छा लग रहा है, चाचा जी”, गप्पू ने उत्तर दिया।

“कल मौका मिलेगा तो मैं लाइब्रेरी से तुम लोगों के लिए जो भी किताब मिलेगी लेता आऊँगा।”

गप्पू अब पूरी तरह तैयार था।

“आप हमारे लिए किताब लायेंगे तो यह अच्छा होगा। मुझे कई चीजें उसकी भाषा में विचित्र लगती हैं।”

“शताब्दी के आरंभ की भाषा है न वह। कुछ-न-कुछ विचित्र तो होगी ही।”

पलटू इस बीच चुप था।

उसकी ओर देख कर पं. मोहन देव पंत बोले -- “आप हिंदी तो पढ़ लेते हो न?”

“थोड़ी-थोड़ी।” वह बोला।

“यह पंजाबी बोलता है -- पंजाबी पढ़ लेता है न?”

“और क्या”, वह बोला।

“ठीक है मैं हिन्दी या पंजाबी में इसके लिए किताबें खोज निकालूंगा।” पंडित मोहन देव पंत ने पलटू को आश्वस्त किया, “तो तुम लोग निकलो घूमने। माल रोड की ओर से होकर जाना तो कैण्ट में तुम्हें कोई-न-कोई किपलिंग की जगह बता ही देगा।”

थोड़ी ही देर में होस्टल का एक बड़ा-सा जत्था दो चार टुकड़ियों की शकल में होस्टल से निकला। वह एक छुट्टी का दिन था और हमेशा की तरह सभी नौजवान अपनी बेहतर पोशाक में बाहर निकले। छुट्टी के दिन का माहौल कुछ बदला-बदला-सा होता है। एक खास क्रिस्म की मस्ती जैसा उदार वातावरण चारों तरफ बसा हुआ होता है।

गप्पू की टोली में फैसला हुआ था कि जी.एम.एन. कॉलेज के अपने साथियों से भी परामर्श करेंगे और दोनों के बेहतर छात्र इसमें शामिल कर लिए जाएँ।

कॉलेज पहुँचे तो गेट बंद था।

शायद कॉलेज में छुट्टी थी।

बड़ी देर बाद कहीं से चैकीदार आया बोला -- “आज छुट्टी है।”

यह तो हमें भी पता था। हम होस्टल में जाने के लिए उससे गेट खुलवा रहे थे।

भीड़ देख कर वह थोड़ा सकुचाया। “क्या इतने लोग अंदर जायेंगे?”

“नहीं भाई। कुछ ही जायेंगे।”

“अपने दोस्तों से मिलना है।” गप्पू ने कहा।

“तो नाम बताईये। हम यहीं बुला लाते हैं।” चैकीदार बोला।

“क्या आप सबको पहचानते हैं?” किसी ने सवाल दागा।

“जी साब...” वह हकला गया।

“अरे भाई हम सनातन धर्म कॉलेज से आए हैं। दोस्तों से मिलना है।”

“वो तो ठीक है। पर इतने सारे लोग...”

“क्या कॉलेज के वक्त ज्यादा लोग अंदर नहीं जाते?”

“आजकल कॉलेज बंद है ना। बस होस्टल में ही लोग जाते हैं।”

“वही तो”, उसके उत्तर में कोई बोला -- “हम भी तो होस्टल में अपने दोस्तों को मिलने जा रहे हैं।”

“एक मिनट ठैरो मैं वार्डन साहब से पूछकर बताता हूँ”, उसने कोने की तरफ खुलने वाले दरवाजे को भी भीतर से बंद किया और दौड़ते हुए वार्डन के घर की ओर भागा।

वार्डन होस्टल के पास ही एक खुले बंगले में रहते थे। हमारे सभी साथी गेट के आस-पास ही खड़े थे। वे सभी हैरान थे कि पड़ोस के कॉलेज में होस्टल वासियों के साथ दूसरी तरह का बर्ताव किया जा रहा है।

गार्ड एकदम भागते हुए ही लौट आया और उसने बिना कुछ बोले गेट खोल दिया। हम सब भीतर चले आए। गप्पू ने दौड़कर अपने दोस्त का दरवाजा खटखटाया, तो उसके कमरे से चार लोग निकल आए और सब बारी-बारी कर गप्पू से गले मिले।

वे लोग भी प्रसन्न हुए कि संसार के बड़े लेखक का संबंध इस नगर से रहा है। आनन फानन जी.एम.एन. कॉलेज के छात्रावासी भी सज-धज कर बाहर आए। एक बड़ा-सा टोला धीरे-धीरे अम्बाला छावनी की ओर बढ़ रहा था।

जब छावनी इलाके में पहुँचे तो फौजी कानून के मुताबिक उनसे अनुमति लेने के लिए एक बड़े अफसर को मिलना पड़ा। उन्होंने सभी छात्रों के लिए तत्काल एक बड़ी गाड़ी वहाँ मंगवा ली और एक बड़े से अधिकारी के साथ सारे दल को उस जगह के लिए रवाना किया। फौजियों के इस व्यवहार से नौजवान लोग बड़े खुश थे। और आपसी बातचीत में वे इस बात की कृतज्ञता पूर्वक सराहना कर रहे थे। कुछ ही देर में सब लोग छावनी के उस हिस्से में पहुँचे।

वह पेड़ों के पास एक झुरमुट-सा था। उसके बाहर छोटा बोर्ड रंगा था जिसमें अंग्रेज़ी में कुछ पंक्तियाँ लेखक के बारे में उकेरी गई थीं। गप्पू ने अपने पास मौजूद जानकारियाँ को छात्रों तक पहुँचाया। गप्पू के उस वक्तव्य की फौजियों के सराहना की और फिर गाड़ी में बैठने का आग्रह किया।

लौटते वक्त सब लोग हैरान रह गए क्योंकि मुख्य द्वार के पास स्वागत कक्ष के बाहर छात्रों के लिए न सिर्फ कुर्सियाँ बिछाई गई थीं बल्कि स्वागतार्थ जलपान की भी व्यवस्था की गई थी।

अभी लोग पहुँचे ही थे कि छावनी के बड़े अधिकारी वहाँ औपचारिक रूप से छात्रों को सम्बोधित करने के लिए भी आ पहुँचे थे।

उनके माईक सिस्टम को देख कर कॉलेज के सभी साथी खुश थे और दिलचस्पी से उस ओर देख रहे थे। कमांडिंग अफसर ने माईक पर कहना शुरू किया।

“नौजवानों हमें आपसे मिलकर बहुत खुशी मिल रही है।”

छात्रों ने जोरदार आवाज़ों से कमांडिंग अफसर के कथन की सराहना की और फिर वे चुप हो गए।

“हमें खुशी है कि आप दुनिया के बड़े लेखक किपलिंग के बारे में जानने आए।” उन्होंने थोड़ी देर रुक कर चारों ओर देखा। बैठने की जगह पर्याप्त सुविधाजनक थी। वैसे भी कैंट क्षेत्र अपने रख-रखाव के लिए प्रसिद्ध होते हैं। अंदर सभी सड़कों पर गेरूए रंग की बजरी बिछी हुई थी। चैराहे छोटे-छोटे बागीचे जैसे थे, सड़कों के किनारे बोगन बेलिया की लहराती हुई बेलें थीं और भीतर बड़े-बड़े पेड़ थे। कुछेक तो इतने पुराने थे कि उनके पुराने इतिहास को जानने की जिज्ञासा जाग रही थी। उन्होंने अपना बोलना जारी किया -- “हमारा लक्ष्य यह भी है कि आप नौजवान लोग फौजों के बारे में, फौजियों के बारे में कुछ जानें। यह तो आपको पता है कि फौज का काम पूरे राष्ट्र की सुरक्षा और राष्ट्रीय हितों की रक्षा करना है। हम अपने राष्ट्र के पहरेदार भी हैं और बाहर की किसी भी कुदृष्टि का उचित उत्तर देने के लिए सदैव तैयार भी हैं। और देखा जाए तो हम आप लोगों से ही मिलकर हम बनते हैं।”

कमांडिंग अफसर की बातें रोचक और लच्छेदार थीं और वे छात्रों को बाँधे हुए थीं। तभी फौजियों ने बीच में सबको चाय पिलानी आरंभ कर दी। हर छात्र के हाथ में कप और प्लेट जिसमें खाने की सामग्री भी करीने से रखी गई थी।

कमांडिंग अफसर का बयान जारी था -- “हम चाहते हैं कि हम आप लोगों को भी इस ओर आकर्षित करें कि आप विभिन्न प्रतियोगिताओं में लेकर फौज को चुनें।”

कमांडिंग को जोरदार तर्कपूर्ण शैली का जादुई असर हुआ था। हमारे अनेक साथी वहाँ प्राप्त साहित्य उठा कर उसमें अपनी जाग्रह रुचि का प्रदर्शन भी कर रहे थे।

चाय पीने के दौरान ही दूसरे अफसरान वहाँ आ चुके थे। कमांडिंग अफसर के धन्यवाद के बाद पूरा माहौल अनौपचारिक हो गया था।

शायद पहली दफे हम किसी ऐसी जगह गए थे। जहाँ बेहद अप्राकृतिक-सा हो आया था। इस पर सिर्फ गप्पू ही गौर कर पाया।

वह क्या था ? जिसने पलटू को थोड़ा विचित्र स्थिति में डाल दिया था ? एक ऐसा प्रश्न है जिस पर गप्पू ही गौर कर सकता था क्योंकि उसी के परिज्ञान का यह विषय था।

गप्पू ने खुद-ही-खुद से पूछा कि “आखिर यह मामला क्या है ?”

और इसका उत्तर एक आदमी के अस्तित्व से जैसे जुड़ कर अपना अर्थ विस्तार कर रहा था।

क्या था वह ?

यही एक प्रश्न था जो गप्पू और पलटू की अन्तश्चेतना में हिलोरें ले रहा था।

अचानक उस वार्ता में झलका कि हम जाति जैसी चीज़ में यकीन नहीं करते। ऐसा कहा भी नहीं गया था। इसका अर्थ पलटू से अपने बोध से लिया था क्योंकि जब बहादुरी के पैमाने से वह देखा जाता है तब डोगरा रायफल्स, गुरखा ब्रिगेड सिक्स रेजीमेंट जैसी संज्ञाओं की ज़रूरत क्या थी ? अचानक ही ऐसे सवाल मन में उमगने पर पलटू से उनका दूसरा सिरा अपनी कल्पना से बुन लिया था और उस प्रकरण में चुपके से गप्पू को भागीदार बना लिया था।

सारी बातें हवा में उड़ाने लायक थीं। होना भी यही चाहिए था।

पर जब लौटे तो जिन दो दोस्तों की वजह से यह संभव हुआ था। वे दोनों चुप। गमगीन। और अपने में डूबे हुए थे।

लौटते हुए कहीं और जाने की बजाए सभी जन गप्पू के होस्टल लौट आए।

रास्ते में अलग-अलग ग्रुप बन गए थे और वे तीन-तीन चार-चार के झुण्ड में ही कैंट से जगाधरी की ओर जाने वाली सड़क पर पैदल ही लौट आए।

वह दिन एक अविस्मरणीय दिन था।

सारे साथी चाहे वे विज्ञान के थे या कलाओं के देशी-विदेशी साहित्य में गंभीर रुचि रखने वाले थे। कम पढ़े लिखे पलटनदास ने यह बात स्वीकार की थी कि उसकी दिलचस्पी शिव कुमार बटालवी में है और उसकी कविताएँ उसे पसन्द थीं।

लौटने पर पंडित मोहन देव से भेंट हुई तो उन्होंने कुछ देर बाद गप्पू के कमरे में आने का वादा किया और सचमुच हम लोगों के पहुँचते-पहुँचते वे भी आ गए। विषय वही था जिस पर हम शाम से चर्चा कर रहे थे।

और हुआ भी यही कि पंडित मोहन देव पंत ने फिर साहिर लुधियानवी और फिराक गोरखपुरी पर आधिकारिक ढंग से बोलना शुरू किया।

होस्टल के अन्य साथी पंडित जी की बातें मंत्रमुग्ध होकर सुन रहे थे। कुछ चकित थे कि संस्कृतज्ञ उर्दू शायरी पर इस तरह बतिया सकता है।

धीरे-धीरे छात्रों ने पंडित जी से साहिर की लोकप्रिय गज़लों के बारे में सवाल करने शुरू किए। और वे जानकर हैरान हुए कि फारसी शब्दों के उम्दा संस्कृत विकल्प पंडित जी अपने उत्तर में सुझा रहे थे। पलटू इस सारे प्रकरण से हतप्रभ-सा चारों ओर देख रहा था। आज के लिए वह गप्पू का मेहमान था - होस्टल में एक दोस्त मेहमान के रूप में।

अचानक ही पंडित मोहन देव पंत ने अपनी जेब से एक कागज़ निकाला और उसे देखा।

“अरे -- एक बात तो मैं भूल ही गया था...” उन्होंने छात्रों की ओर देखना जारी किया -- “क्या आप लोग मेरी बात सुन रहे हैं ?” यह कह कर वे कुछ देर के लिए रुके... और फिर उन्होंने बोलना शुरू

किया -- “कल शाहाबाद मार्कण्डा में विनोबा जी आ रहे हैं ? जानते हो न विनोबा भावे के बारे में ?” उन्होंने एक प्रश्न-सा हम सबसे किया।

समवेत स्वर में सबने उत्तर दिया -- “हाँ...”, उस सारे समूह में विनोबा के बारे में सबसे कम जानने वाला पलटू था। उसने सिर्फ अखबारों और रेडियो में विनोबा के बारे में सुना था यही सूचना उसके मन मस्तिष्क में जमा थी कि वे गाँधी जी के शिष्य हैं।

उन दिनों विनोबा जी देश के कोने-कोने में पद यात्रा कर रहे थे। और भूदान द्वारा वे भूमिहीनों को कृषि योग्य भूमि मुहैया करा एक नये किस्म के साम्यवाद को जन्म दे रहे थे। हम नौजवान लोग उस काल खण्ड में वाम राजनीति से इतने अधिक प्रभावित थे कि विनोबा का यह कदम हमें साम्यवादी विरोधी, अमरीकी परस्त नीतियों से ग्रस्त लगता था। उन दिनों के वाम दृष्टि प्रभावित पत्रों में विनोबा की कड़ी आलोचना होती थी किन्तु विचित्र-सी बात थी कि विनोबा जी के अभियान को भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में आषाढीत समर्थन मिल रहा था। कुछ प्रान्तों में तो मध्यवित्त ग्रामीणों ने अपनी अतिरिक्त भूमि विनोबा गाँधी को देने की पहल आरंभ कर दी थी। ऐसे विनोबा को देखने का लोभ कैसे छोड़ पाते? पंडित मोहन देव पंत की सूचना क्या पाई कि सनातन धर्म कॉलेज होस्टल से ही सौ साइकिल सवारों ने कुछ ही देर में अपने नाम गप्पू की खिड़की से कागज़ों पर लिख लिख कर डाल दिए थे।

कल्पना कीजिए सौ साइकिल सवार एक छोटे से होस्टल से निकलेंगे -- तो कैसे क्योंकि होस्टल की कुल जमा संख्या सौ से तो बहुत कम थी। होस्टल में लड़कियाँ बिल्कुल भी नहीं थीं पर बीस से ज्यादा लड़कियों के नाम आ गए थे। शहर की सभी किराए पर साइकिल देने वालों के यहाँ से साइकिलें बुक हो चुकी थीं। पलटू ही अकेले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने अपना नाम खुद दिया था और सबसे पहले साइकिल लाकर खड़ी कर दी थी। उस सुबह का नज़ारा ही और था।

सब लोग पाँच बजे एकदम तैयार थे। गप्पू और पलटू एक-एक नई नक़ोर साइकिल लिए खड़े थे। पंडित मोहन देव पंत के पास एक बहुत पुराने मॉडल की साइकिल थी जिसे रातों रात माली महोदय ने तेल आदि डालकर चलने योग्य बना दिया था। सारा रास्ता सिर्फ आधे घंटे का था। मार्कण्डा नदी के किनारे एक जगह सबको इकट्ठा होने का आदेश मिल चुका था।

सुबह सबेरे इतनी भीड़ देखकर सड़कों के किनारे बसे लोग हैरान थे। पर खुश थे यह जानकर कि लोग गाँधी जी के चेले को देखने इतनी संख्या में आ रहे हैं। शाहाबाद मार्कण्डा की ओर आने वाली तमाम सड़कें भरीं थीं। और नदी किनारे खुली जगह पर जहाँ बाबा विनोबा भावे को आना था वहाँ नरमुंड ही नरमुंड थे।

विनोबा पैदल यात्री थे और उनके साथ अनेक भूदानी थे जो लंबी यात्राओं के बाद पंजाब पहुँचे थे। यह पूर्वी पंजाब का हिस्सा था जो यमुनानगर, छिछरौली तक फैला हुआ था।

जिस सड़क से विनोबा जी आ रहे थे उसके चारों ओर लोग खड़े थे और सच यह था कि विनोबा भावे बड़ी तेजी से चलकर आ रहे थे। कतार से एक पांत में चल रहे लोग कुछ-कुछ अचरज-सी चाल में आगे बढ़ रहे थे। अचरज की चाल का अर्थ था कि लोग तेज़ी से चलकर आ रहे थे और दूर से देखने पर लगता था जैसे दौड़ कर आ रहे हों।

हम साइकिल सवारों की तरह असंख्य अन्य लोग भी थे किंतु शिक्षा संस्थाओं की इस टोली का विशेष महत्त्व था क्योंकि आगे के चार सवारों में पंडित मोहन देव पंत, गप्पू उनके मित्र पलटू और एक दूसरे कॉलेज के साथी थे। यह टोली विशेष इस अर्थ में भी थी कि इनके आने की खबर ठीक बाबा विनोबा के आने की खबर जैसी थी क्योंकि आयोजकों ने इस अवसर को व्यापक रूप से जनसमुदाय की चेतना जगाने की दृष्टि से देखा था।

यह संयोग ही था कि शाहाबाद मार्कण्डा में बाबा का कार्यक्रम थोड़ी देर का ही था और वे कुछ घोषणाएँ कर अपनी पदयात्रा के अगले पड़ाव के लिए तत्काल रवाना होने वाले थे।

तथापि उस छोटी अवधि के कार्यक्रम में जितने लोग इकट्ठे हुए थे उनकी कल्पना करना भी कठिन था। अखबार के लोगों ने उसे लाखों की भीड़ स्वीकार किया था। उस काल के सरकारी आंकड़े तो उसे कई लाखों की भीड़ स्वीकार कर रहे थे। उस भीड़ ने शांत स्वभाव के विनोबा को एक दिव्य मूर्ति के रूप में स्वीकार किया।

बाबा को अनेक किसानों, बड़े भूमिपतियों और पट्टेदारों ने जमीन भेंट कर दी। सारा माहौल उत्सव जैसा था। लोग अपने-अपने गाँवों से ढोल-नगाड़े बजाते हुए आए थे। बाबा की उपस्थिति में उन्हें जोर-शोर से नाचने का मौका मिल रहा था। बच्चे, जवान, बूढ़े सभी ऐसे दृष्टियों को देख कर खुश थे। पंजाब के खुशहाल किसानों की भागीदारी तो वहाँ कम थी, पर ज्यादा संख्या में भूमिहीन थे, वे उस जगह अपनी समस्याओं के निदान की बात सोच कर आए थे। लाउड स्पीकर पर तरह-तरह के वक्तव्य सुनाई दे रहे थे। कुछ-कुछ देर बाद भूमिदान दाताओं के नाम सुनाई देते तो भीड़ हलक कर तालियों से उसका स्वागत करती। बार-बार एलान हो रहा था कि बस कुछ ही देर में बाबा भीड़ को सम्बोधित करेंगे।

यह सूचना मिलते ही भीड़ बेचैन हो जाती और कई बैठे हुए लोग अपनी जगह पर कसमसा कर उठ खड़े होते।

पीछे से आवाज़ें आने लगतीं -- “बैठ जा भाई। बैठ जा। तुझे बैठे-बैठे ही सब कुछ दिखाई देगा।”

खड़ा आदमी शर्मसार हो कर बैठ तो जाता पर उसकी बेचैनी दूर नहीं होते। अगले किसी दानदाता का नाम सुनाई देता तो लोग

तालियाँ बजा देते, पर मरे मन से। सबकी इच्छा तो बाबा की आवाज़ सुनना था। जैसे वह स्वर्ग के किसी देवदूत की आवाज़ हो। लोगों का ध्यान अब सिर्फ़ बाबा की ओर था। विनोबा जी उनकी दृष्टि में दूसरे महात्मा थे। महात्मा गाँधी।

भीड़ अपने नारे लगातीं और बीच-बीच में इंकलाब जिन्दाबाद के साथ महात्मा गाँधी अमर रहे भी दुहरा देती।

तभी मार्कण्डा के तट पर पंजाब की कुशितियों की खबर का एलान आया और लोगों ने जोरदार ढंग से उसका स्वागत किया। पंजाब में स्वाधीनता के बाद कुशितियों का एक नया दौर बढ़त पर था। यह ऐसा वक्त था जब सियासत में आए दिनों बदलाव आ रहा था और सियासत के लोग तोड़-फोड़ की राजनीति आरंभ करने लग गए थे। यही दौर था जब पहलवानी का स्तर बढ़ रहा था। लोगों में उसकी अभिरूचि बढ़ी हुई थी। परंतु अभी लोग विनोबा भावे की वार्ता सुनने के लिए वहाँ जमे थे। तरह-तरह की घोषणाओं के बावजूद लोग उठ नहीं रहे थे। यह जादू था उस विश्वास का जो लोगों के मन में भारतीय किस्म की समता देखने के हेतु पनपा था। उसकी व्याख्या करना कठिन है परंतु वह किसी तरह से पुराने पंजाब के पूर्वी पंजाब तक लोक विश्वास की तरह प्रचलित था। उसमें महाभारत, कुरुक्षेत्र जैसी अवधारणाएँ भी थीं जो प्राचीन काल से अपने ऐतिहासिक महत्त्व को संजोए हुए थीं और नए भारत में अब गाँधी के बाद विनोबा की ओर टकटकी लगाए जैसे भाव से उपस्थित थीं और वह उस सक्रिय, दिलचस्प, सदैव स्वागत योग्य खेल के प्रति भी लोगों को अराजक नहीं बना रही थी जिसकी घोषणा हुई थी।

विनोबा बोलने के लिए उठे तो थोड़ी देर के लिए सांसे रुक गई थीं। वे एक तरह से बहुप्रतीक्षित वक्तव्य में क्या कहेंगे इसकी भी अपेक्षा थी और न जाने कितनी अपेक्षाओं से जुड़ी हुई कोई चीज़ थी जिसे सुनने के लिए लोग बेताब थे।

उन्होंने देशवासियों के लिए जो सम्बोधन चुना वह पंजाब के इस इलाके के लिए नया था। और उसी को लेकर एक तरह से न रुकने वाली तालीबाजी हुई। जब तालियाँ थमीं बाबा ने पूरे हिन्दुस्तान को बदलने की लोगों को प्रेरणा दी और वह बदलाव भूमि का दान करने से ही संभव था। बाबा की बेहद मानवीय अपील ने लोगों को भीतर तक छुआ। न जाने कहाँ-कहाँ से लोग आए थे और ऐसा लगता था जैसे वे देने के लिए ही आए हों।

बाबा की बातों से सभी जन बहुत खुश लगे और फिर अचानक बाबा अपनी बात खत्म कर अगले पड़ाव के लिए चल पड़े।

बाबा को देखना भी एक अनुभव था।

वह एकदम दूसरे गाँधी थे। एक गाँधी ने देश को गुलामी से, बाहरी गुलामी से आज़ाद किया तो दूसरे गाँधी ने भीतर से देश को आज़ाद कराने का बीड़ा उठाया।

वह भीड़ अब बाबा के जाने के बाद कुशती देखने की ओर मुड़ रही थी। भीड़ का सैलाब एक जगह से उठकर दूसरी जगह दिखाई दे रहा था।

उधर सिर्फ़ सिर ही सिर थे।

आप अपनी आँखों से यही देख सकते थे। बस सुख यह था कि वह एक ढलान वाली जगह थी और नीचे नदी के खुले तट में कुशती लड़ने के लिए खुली जगह थी। जो मटमैली तो थी ही। उसे अच्छी तरह खोद कर समतल बनाया गया था। उस समतल जमीन को आड़ी तिरछी रेखाओं से एक नियमबद्ध जगह का रूप दे दिया गया था।

तभी कहीं से वहाँ एक माइक खड़ा कर दिया गया था। और कुछ लोग माइक को जाँचते परखते भी दिखाई दे रहे थे।

“हैलो... हैलो”, जोरदार आवाज़ सुनाई देने लगी थी और लोग भाग-भाग कर अगली पंक्तियों में धक्का-मुक्की कर रहे थे। और कुछ पहलवान से दीखने वाले आदमी चक्कर काटने लग गए थे।

कुशती के बारे में घोषणाएँ अब भी हो रही थीं और कुरु प्रदेश के उस इलाके में उसकी लोकप्रियता की न जाने कितनी वजहें थीं कि उसमें न सिर्फ़ बाबा विनोबा के दर्शनार्थ आए लोगों की रुचि थी बल्कि उनके पीछे उनके पूरे के पूरे परिवार शामिल होने के लिए जो भी सवारी उपलब्ध हुई उसी में आकर हर कोई अपनी अच्छी जगह के लिए दौड़ धूप कर रहा था और इस काम में न कोई थकान थी, न पसीने की चिन्ता न धूप की गर्माहट और न कोई अन्य समस्या... बल्कि जैसे कुशती के हार जीत के बाद सभी समस्याओं का अंत हो जाता होगा... लोग इसी बुनियाद पर अपने दूर-दराज गाँवों से यहाँ आते और फिर किसी-न-किसी के समर्थक हो जाते।

परन्तु तभी कुछ अचानक-सा कुछ घटा और बैठे लोग उठ कर जिस दिशा की ओर भाग सकते थे उस दिशा की ओर भागे... हम लोग, जो साइकिलों से आए थे बाँध के से उत्तरी सिरों पर खड़े यह देख कर हैरत में पड़ गए कि यह हुआ तो क्या हुआ ? अचानक जब भीड़ का बड़ा हिस्सा बाँध के रास्ते की ओर हड़बड़ाता दौड़ता लपका तो समझ में आया कि कुशती करने वाले दो दलों में जमकर मारपीट हुई है। इतनी देर उद्घोषणाएँ बंद रहीं और उस अफरातफरी में सामान बेचने वाले लोग अपना सामान बचाने की जुगत में लगे रहे।

अचानक ही होने वाली इस वारदात के बाद जब धीरे-धीरे स्थिति सामान्य होने लगी तब पंजाब पुलिस के जवान दिखाई दिए जो शांत नागरिकों को डराने के लिए हर संभव कोशिश कर रहे थे।

दंगई लोगों को पकड़ना मुश्किल था। पकड़ में जो आए वे दया करने योग्य थे। पकड़ में आए थे चोट खाए लोग, बुजुर्ग और अनजान से लोग। दंगई लोग भीड़ में ही कहीं छिप गए होंगे। साइकिलों वाली हमारी टोली से भी पुलिस ने पूछताछ की लेकिन कुछ देर

बाद यह जानकर कि बच्चे अम्बाला के कॉलेजों से हैं -- पूछताछ बंद कर दी।

कुछ देर बाद फिर कुश्ती घोशणाएँ आरंभ हुई। अब टीमों का ऐलान हो रहा था। पहली टीम सोनीपत की बताई गई। उसके मुकाबले कैथल की टीम का नाम आया। हमारे साथ का पलटन दास भीड़ में कैथल की टीम खोजने लगा। उसका कैथल से कोई सम्बन्ध था। इसी कारण वह कुछ बेचैन-सा लग रहा था।

“अरे वो कहाँ जा रहा है”, हमारे सबसे सीनियर मोहन देव पंत जी बोले। और वे कहने के साथ ही उसके पीछे-पीछे चले गए। उन्हें डर था कि अभी घटी वारदात के बहाने फिर कुछ न हो जाए।

वे पलटन दास की दिशा की ओर ही गए थे।

लोगों ने उस वक्रत देखा कि पंडित मोहन देव पंत तेज़ी से भीड़ चीरते पलटन दास के पीछे जा रहे हैं। यह नहीं दिखाई दिया कि उन्होंने पलटन दास को पकड़ा कि नहीं पकड़ पाए परन्तु कुछ देर बाद वे भी दीखने बंद हो गए।

दूर से उस भीड़ में अब किसी को पहचानना भी कठिन था। क्योंकि कुश्ती क्षेत्र के घेरे के अलावा ढलान की ओर फैले लोगों को बिठाने की कोशिश में सेवादार लोग हर तरह से प्रयत्न कर रहे थे, यहाँ तक कि वे अपने डंडो का प्रयोग भी कर डालते। अगली पंक्तियों के लोग बैठ गए थे और देखा-देखी में पीछे भी लोगों ने बैठना शुरू कर दिया था किन्तु खड़े और बैठे लोग समान रूप से खड़े लोगों पर चिल्ला रहे थे। “बैठ जाओ... बैठ जाओ का जैसा सामूहिक वाक्यांश थोड़ी-थोड़ी देर बाद दुहराया जा रहा था।

दो पहलवान कुश्ती की नियत जगह में एक-एक सिरे से प्रवेश कर रहे थे। इस दृश्य को देख कर दर्शकों के बीच हलचल की एक हिलोर-सी उमड़ पड़ी। अध बैठे लोग खड़े और बैठे लोग अधबैठे हो गए थे। उनकी स्थिति देखकर बहुत पीछे बैठे लोगों ने प्रतिवाद स्वरूप कुछ आवाज़ें जब निकालनी शुरू कीं तभी अनुमान हुआ कि विरोध की लम्बी आदत या परंपरा है।

“बैठो”, कड़कती आवाज़ ने माइक्रो फोन से कहा तब थोड़े पल के लिए मौन व्यापा। और लोग बैठने लगे। परन्तु जैसे-जैसे कुश्ती आगे बढ़ी उसी अनुपात में दर्शकों के बीच हलचल और बेचैनी बढ़ने लगी।

पहलवान एक दूसरे को परास्त करने में उद्यम में लगे हुए थे। और जब-जब कोई थोड़ी भी बढ़त हासिल करता तो तालियों की गड़गहाट से पूरा इलाका भर जाता। इस वक्रत बहुत देर तालियाँ बजती रहीं।

अचानक एक पहलवान झटके से नीचे की ओर दौड़ा और थोड़ी देर सन्नाटा भरा रहा। अर्थात् शोर एक लयात्मक रूप से उभरने लगा।

“क्या हुआ ?”

“शायद कोई बीच कुश्ती के भाग खड़ा हुआ है ?” अचानक ही पूछे गए प्रश्न का किसी अनजान आदमी ने जबाब दिया। अब शोर के बढ़ने के साथ लोग भी बेचैन हो गए थे और उठने उठने को ही थे कि ऐलान होने लगा, “अभी कुश्ती का पहला दौर खत्म हुआ है। कोई फैसला अभी नहीं हुआ।”

एक पल के लिए मैं हिसाब लगाने लगा कि सुबह से शाम तक के अपने रोजनामचे में अगर मैं दृष्यों की गिनती करूँ या खुद से पूछूँ कि मैंने कितनी चीज़ें देखी हैं ? मसलन विज्ञापन तो अपने घर से बाहर निकलते ही कांग्रेस सरकार के राज में हर विधायक के क्षेत्र में बड़े-बड़े बैनरों पर लिखा कम था चित्रित ज़्यादा था... चित्रित था स्त्री का अधनंगा जिस्म... जिसके नीचे ढैरों नाम छपे थे। वे सब प्रस्तावक थे। सुबह-सुबह अपने शहर से निकलते जगह-जगह लटके बैनर याद आने लगे। उनमें से कुछ बाबा विनोबा के बारे में थे। कुछ ज़्यादा रोचक कुशितियों के बारे में थे। सुबह की हड़बड़ी में हम लोग ध्यान से उन्हें देख नहीं पाए थे। परन्तु थोड़ा-थोड़ा याद आ रहा है। आज की कुशितियों के विजेता को फिर जालंधर की अन्तर्राष्ट्रीय कुश्ती में अफगानिस्तान में हुई कुश्ती के विजेता से लड़ना था और वही फिर विश्व विजेता बनेगा।

फिर ऐलान होने लगा और उसमें कुछ-कुछ यह भी ध्वनि निकलने लगी कि पूर्वी पंजाब के जो पहलवान आज लड़ रहे हैं उन्होंने देहरादून में अपने प्रतिद्वन्दियों को हराया था।

देहरादून और कुश्ती... मैं सोचने लगा कुश्ती के नक्शे पर चलो देहरादून का तो जाप है।

लेकिन देहरादून का नाम था। शायद गामा पहलवान की कुशितियों से जुड़ा हुआ। मुझे धुंधला-सा याद आ रहा था जैसे मैंने पुरानी युवादियों में सुना हो -- जो सिर्फ सुनने वालों को ही सम्बोधित होती थीं। वे पुरानी युवादियाँ भाषा की दृष्टि से भी दिलचस्प होती थीं।

मैंने याद करना शुरू किया और सहसा मुझे लगा कि स्मृति को कुरेदने से यह संभव होगा कि मैं उनके उस पुराने पाठ को वैसा का वैसा अपनी स्मृति में उतार लूँ। यह संभव था ? असंभव होते हुए भी संभव।

मैंने याद करना शुरू किया तो यही गलती थी। फिर कैसे याद आता। मुझे किसी ने बताया था कि पहले भूल जाओ या भूलने की ओर बढ़ो या सहसा किसी नई चीज़ का हाथ थाम लो तो फिर याद करना आसान हो जाएगा। मैं सुरैय्या की षकल याद कर मन-ही-मन खुश हो रहा था कि देहरादून की कुशितियों की तस्वीर खुलने लगी। मैं सिर्फ एक ही कुश्ती देख पाया था उस साल। और मेरी दिलचस्पी कुश्ती में बढ़ी ही नहीं। बल्कि खत्म-सी हो गई। पर उस साल की वह एक कुश्ती दुनिया में देखी नायाब कुशितियों में एक थी। अखाड़े में बारीक रेत बिछी हुई थी। पहलवान आकर मिट्टी उठाते। मिट्टी



का तिलक लगाते। भूमि का स्पर्श करते और वही अंगुली अपने माथे पर छुलाते और बहुत आहिस्ता से अखाड़े की बुनावट की सराहना करते और अपनी बारी के लिए इंतज़ार करते। वह इंतज़ार भी मामूली इंतज़ार नहीं होता। दर्शकों में सराहना की भावना लिए बहुतेरे नौजवान पहलवान होते। वे उनके निकट जाते और उनसे कुछ-न-कुछ सीखने के अंदाज़ में उनकी पिछली सफलाओं और असफलताओं में देखे उन दावों की चर्चा के लिए लायायित रहते जिन्हें दर्शक के रूप में वे बड़ा चढ़ा कर बताते।

वैसा ही कोई दृष्य था जिसमें दो नौजवान पहलवान बड़े पहलवान की तारीफ करते हुए अचानक एक दूसरे पर टूट पड़े। टूट क्या पड़े उनके रास्ते में जो आया उस पर भी उनके दुहलथड़ ऐसे पड़े कि गनीमत दुहलथड़ खाने वाले अल्लाह के घर नहीं पहुँचे। मेरे बालमन पर छपी वह तस्वीर बहुत सजीव थी। इतनी सजीव कि मैं आज भी उस मैदान के कोने में उगे झाड़ के पत्ते-पत्ते को शब्दों में चित्रित कर सकता हूँ। मैं आपको बता सकता हूँ कि उस साल मूसरी की पहाड़ियों के पीछे कुछेक बर्फानी चोटियाँ भी दिखाई देने लगी थीं। पिवालिक की पहाड़ियों के पीछे जब शाम का सूरज डूबने लगता तो चकरौता और मूसरी की पहाड़ियों पर ज़्यादा आलोक दिखाई देता और कोई आसानी से अंदाज़ा लगा सकता कि चीड़ और देवदार के पेड़ों के घनेपन के पीछे उस मौसम का ही हाथ है जो हिमालय और पिवालिक की बीच की घाटी को सदाबहार रखता है।

शामों को जब पहलवानों की कुश्ती परेड ग्राउण्ड में घोषित होती तो डालनवाला सड़कें और राजपुर रोड ट्रैफिक से भर जातीं। शाम को पल्टन बाज़ार में ज़्यादा भीड़ नज़र आती और उनमें से ज़्यादातर स्थानीय स्कूलों के बच्चे होते जिन्हें हफ्ते में एक दिन बाहर घूमने का मय्यसर होता। वे भी पहलवानी दंगलों के पोस्टर गौर से देखते। उस साल दुनिया भर से पहलवान आए थे और हर रोज विज्ञापनों वाले पोस्टरों पर नए नाम और नई तस्वीरें छपी होतीं।

इन पोस्टरों की भाषा बहुत दिलचस्प होती जो हर आने जाने वाले को कुछ देर के लिए रोक लेती। वह आकर्षण अपने ही ढंग का होता। परंतु सबसे ज़्यादा आकर्षण था भाषा का। हमारी अपनी भाषा में विदेशी पहलवानों के नाम भी अपनी ओर खींचते उनकी मुद्राएँ भी आकर्षण का केन्द्र होतीं और सबसे बड़ी बात थी राष्ट्रियता से जुड़ी। भारत आज़ादी के बाद नए राष्ट्र के रूप में उभरा था अतः नए राष्ट्र की षक्तियत्ता का सवाल था और उस प्रश्न का उत्तर था 'विजय'। वह भी किसी भी क्षेत्र की विजय ही क्यों न हो ? और पहलवानी की विजय तो जैसे मन मस्तिष्क में धूम मचा देती थी।

अचानक ही जैसे कोई पर्दा खुला और मैंने पाया कि मैं धुर बचपन से किशोर होने के रास्तों पर जा पहुँचा और हैरानी वाली बात थी कि उसमें पलटू भी शामिल था।

शायद पलटू के अचानक अवतरित हो जाने से यह आकस्मिक-सी बात हुई हो। पर्दा खुला तो राष्ट्रों के युद्धों की तस्वीरें दिखाई देने लगीं... उस साल हमारे छोटे कस्बे में जम कर बर्फवारी हुई थी। हम दुपहर से पहले स्कूल में बड़े-बड़े आदमकदबुत बना कर फारिग हुए ही थे कि फिर बर्फ पड़ने लग गई थी। पलटू का घर बाज़ार से सटी नीचे की सड़क पर था जो मिलिट्री कैंट की ओर जाती थी। पलटू के पिता उन दिनों बीमार थे। उसे दौड़ कर घर जाना था। पर बर्फ ने हम सबका रास्ता रोक दिया था। कुछ देर तो बर्फ का गिरना देखते रहे।

बर्फ के फाहे हमारे कपड़ों, बालों, और जूतों पर टिक जाते और थोड़ी ही देर में वे हमारे उन हिस्सों को गीला कर डालते जो जल्द ही हमें ठण्डेपन का तीव्र अहसास कराने वाले थे।

बर्फवारी से बचने के लिए अब कोई रास्ता नहीं था। हमें ढूँढ ढाँढ कर एक जगह दीखी जो पुलिया की षक्ल में थी। हम वहीं नीचे की ओर दौड़ कर गए और किनारे खड़े होकर बर्फ और अब वर्षा का नज़ारा देखने लगे।

“अरे... यह क्या ? पुलिया के बीचों-बीच कुछ गठुर से पड़े हुए थे।

“सामान के बोरे हैं”, पलटू ने उत्तर दिया और फिर एकदम बोला -- “अरे इनमें तो चिट्ठियाँ-ही-चिट्ठियाँ भरी पड़ी हैं।”

“डाकखाने का माल होगा” पलटू बोला, “नहीं बेटा पता चलेगा कि क्या माजरा है ?”

“क्यों”, मुझे कुछ सूझ नहीं रहा था कि क्या कहूँ। बस मन में यह बात जम गई कि कुछ है खास बात है।

वो तो मुझे भी महसूस हो रहा था। पर खास बात उस छोटी उम्र में रिश्ता सिर्फ हमारी ज़रूरतों से जुड़ा था और उस वक़्त उन बोरों से निकलती चिट्ठियों के सही अर्थ चाहे हमें नहीं मालूम थे पर उनके लिफाफों ने हमें चकित कर दिया था। वे विदेशों के पत्र थे जो रियासत को भेजे गए थे और वह भी आज़ादी से पहले।

हम लोगों ने पहला ही बोरा खोला तो बड़े-बड़े षण्डलों में बँधे पत्र पुलिया की खाली जगह पर खुल कर बिखर गए थे।

हम लोगों ने सबसे पहले खाली लिफाफों को अपने कब्जे में कर लिया।

उन लिफाफों पर मनोहारी, डाक टिकटें थीं।

“ओ बाबा...” पलटू ने अपने हाथ में लिफाफे लिए “देख गप्पू -- अरे ये मुल्क अब नक्शे में नहीं है।”

“क्या मतलब”

“अरे तू एटलस देख... देख न... उसमें भी इस मुल्क का जिक्र न होगा ?”

“अरे हाँ याद आया...”

ये संवाद मुझे हू-ब-हू याद है। बचपन की थोड़ी ही चीजें याद रहती हैं। उन थोड़ी चीजों में शैतानियों की कुछ वारदातें कभी नहीं भूलतीं। हाँ -- उनके ब्यौरे भूल जाते हैं।

पर यह टिकटों की दुनिया जो हम लोगों को मिली तो लगा दुनिया का बेशकीमती खज़ाना हाथ लग गया हो।

यह सच भी था। और जब से डाक टिकटें जमा करनी शुरू कीं -- तब से ही दुनिया के दूसरे मुल्कों के बारे में जानने की चाह भी विकसित हुई। वह एक ऐसी जिज्ञासा है -- जो अभूतपूर्व ही कही जाएगी। हर अर्थ में।

असल में पलटू को जो शौक थे, उनमें मेरी भागीदारी कुछ ऐसी थी जिसके कारणों पर हम आज बहस कर सकते हैं पर अपनी चाह खत्म नहीं कर सकते।

बाहर बर्फ पड़ रही थी और हम दो... उस वक़्त हम बस किशोर थे। अल्पवय किशोर और हम एक पुलिया के नीचे पुलिन्दों के बीच थे।

कुछ बातें उस वक़्त की मुझे याद हैं कुछ पलटू को याद थीं। इसलिए जब भी हम मिलते तो उस बर्फानी दिन की बात ज़रूर करते। उस दिन क्या हुआ, क्या घटा, क्या हलचल रही इसके ब्यौरे तो सारे नगर के पास थे। मसलन स्कूल और सेक्रेटेरियेट के लोगों के बीच बर्फ के गोलों के प्रहार...

अब यह बात मुझे उस वक़्त के प्रिंसिपल अंग्रेज बहादुर नेल्सन ने बताई थी जो मुझे अचानक वर्षों बाद देहरादून में मिल गए थे। उन्होंने मुझे बिल्कुल नहीं पहचाना। बल्कि मैंने ही उन्हें पहचाना। और उन्हें देखते ही मुझे जोरों से वह बर्फानी दिन याद आया और याद आई उस पुलिया की...

“सर... सर”, वे देहरादून के घंटाघर के पास से पलटन बाज़ार की ओर लपके हुए जा रहे थे कि मैंने उन्हें पहचाना और पीछे से आवाज़ दी।

वे रुके और पीछे मुड़कर कुछ असहज से मेरी तरफ देखने लगे। यह उनकी अंग्रेज आदत थी। एक अपहचाने युवक के रोकने पर वे खड़े हुए तो थोड़ा-सा तने हुए भी थे। किसी अनाम गुस्से में। मैंने हिन्दुस्तानी लहजे में हाथ जोड़ कर कहा --

“गुड डे सर”

“वेरी गुड डे। हैव म्यट अर्लीयर ?” उन्होंने पूछा। और मेरे पास आने पर थोड़ी दूरी बनाए रखने के लिए वे पीछे की ओर हटे। पीछे रेलिंग थी जो उनके जूते के पिछले हिस्से को छू गई थी।

मैंने अंग्रेज़ी में ही वार्ता जारी रखी।

“सर, मैं आपका पुराना शागिर्द हूँ। जब आप पहाड़ी स्कूल के हेडमास्टर थे।”

फिर तो वे गदगद से हो गए और उन्होंने हाथ मिलाने के लिए अपना दायँ हाथ आगे कर लिया।

“बहुत अच्छा... बहुत अच्छा...” यह कहते उन्होंने थोड़ा पीछे होकर रेलिंग पकड़ ली और उत्मीनान से खड़े हो गए।

“आपको याद होगा सर उस साल जब बहुत बर्फ पड़ी थी।”

“याद आया... याद आया”, वे बोले, “कहीं तुम मिस्टर उनियाल के बेटे तो नहीं हो ?”

“आपने ठीक पहचाना सर।”

“अरे उस दिन मैं तुम्हें पुलिया के नीचे से न बचाता तो तुम और वो पलटन दास मर गए होते।” उन्होंने ठण्डी सांस भरते कहा।

मुझे आश्चर्य था उन्हें मेरे पिता की याद थी। इतने वर्षों बाद भी जब वे बूढ़े हो गए थे उन्हें उस पहाड़ी शहर की घटनाओं की याद थी।

“सर मैं आजकल पंजाब के एक कॉलेज में अपनी ऑनर्स की पढ़ाई कर रहा हूँ।” मैं कुछ ज़्यादा ही उत्साह से बातें कर रहा था और वे कुछ इस तरह से उत्तेजित हो गए थे कि बोले -- “खड़े खड़े बात करने से क्या फायदा चलकर कहीं बैठ जाते हैं।”

“प्रिंसिपल नेल्सन, आप मेरा आमंत्रण स्वीकार करें तो यहीं इलाहाबाद बैंक बिल्डिंग के साथ रेस्तरां में बैठ चलते हैं।”

“आओ”, और वे उत्साहपूर्वक सड़क पार उस तरफ चले आए। शायद 1956 या 57 का समय होगा। घंटाघर का इलाका भीड़ से लबालब था।

“आजकल भीड़ ज़रूरत से ज़्यादा हो गई है”, नेल्सन ने कहा -- “उनियाल साहब कहाँ हैं ?”

“कभी गाँव रहते हैं कभी यमुना नगर पंजाब में (तब के पंजाब) और कभी दिल्ली”,

“अरे वाह ! जब मिलो पंडित जी से मेरा अभिवादन ज़रूर कहना”,

“अवष्य”, मैंने उन्हें आश्वस्त किया, “हो सकता है वे गाँव में ही मिलें। मैं एक दो दिन में जाने वाला हूँ।”

“मैं भी चलता तुम्हारे साथ। पर अब मुमकिन नहीं।”

मैं प्रश्नवाची मुद्रा में उनकी तरफ देखने लगा।

“बात यह है कि अब मुझसे यात्राएँ नहीं होतीं। इसीलिए मैं अब ज़्यादातर देहरे में ही रहता हूँ।”

तब तक हम उस जगह तक पहुँच गए थे जहाँ बैठना तय हुआ था। नेल्सन साहब थोड़ा मुटा गए थे। या वर्षों के बाद उनको देखने से ऐसा लगा हो।

“मुझे बहुत खुशी हुई”, उन्होंने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा, “तुमने मुझे पहचान लिया और देखे मेरी स्मृति में वे घटनाएँ वैसे ही खुदी हुई हैं।”

“सर मुझे तो ऐसा आनन्द प्राप्त हो रहा है कि मैं अपने भाव व्यक्त ही नहीं कर सकता।”

“पार्टीशन के दिनों तुम्हारे पिता के कहने से ही मैं यहाँ भारत में रुक गया था। वरना बाकी अंग्रेजों की तरह मैं विलायत चला गया होता। पर न जाने क्यों मुझे लगता है कि मैंने यहाँ रहकर ही ठीक निर्णय लिया। तुम यकीन करोगे कि मुझे घर की पूर्णतृप्ति देने वाली जगह यही लगती है।”

“सर, आप यहीं पैदा हुए होंगे ?”

“और क्या ?” वे हँसकर बोले, “तुम्हारे पिता हमारे परिवार के बारे में बहुत कुछ जानते हैं। तुम्हें मालूम नहीं मैं और उनियाल शिमला में भी कुछ बरस साथ रहे हैं”,

“ये बातें तो मुझे नहीं मालूम।”

“तुम्हें तो याद भी न होगा जब पंडित जी दो अनाथ बच्चों को माँ बाप की मृत्यु के बाद अपने घर ले आए थे।”

“याद तो नहीं है, पर बातें इतनी बार दुहराई गई हैं कि याद का हिस्सा ही बन गई हैं।” मैं इन बातों से विस्मित होता था। इसलिए कि उनसे मैं यानी मैं जुड़ा हुआ था और दूसरे वे एक व्यक्ति के महत्त्व के प्रकरण से जुड़ी घटनाएँ थीं जो हुई होंगी मुझे नहीं मालूम पर कुछ लोगों की स्मृति से वे जुड़ी हुई थीं।

उन्होंने अपने लिए एक वियर का मग और मेरे लिए काफी मंगा डाली थी। धीरे-धीरे वियर सुडकते हुए वे मुझे वर्षों पहले के मेरे अतीत में ले जा रहे थे। उन वर्षों की धूमिल-सी याद का कोई हिस्सा मेरे पास नहीं था। मेरी स्मृति में पहाड़ी कस्बा, एक घर, चन्द दोस्त थे जिनके सिर्फ नाम मौजूद थे चेहरे नहीं।

“अरे तुम्हें याद होगा तुम्हारा सहपाठी सतीश, अरे वही राज्य के राष्ट्रगान लिखने वाले कवि का बेटा... अरे उनका नाम मुझे भी याद याद नहीं। आ जाएगा थोड़ी देर में याद आ जाएगा। और जब पंडित जी दो दलित बच्चों को घर ले आए तो तुम्हारी सौतेली माँ अपने पति से रूठ गई थी। भई छोटे से कस्बे की वह उस काल की सबसे बड़ी खबर थी। क्या चटखारे लेकर हमारा अंग्लो इंडियन समाज उसे दोपहर के भोजन की मेजों पर एक दूसरे में बाँटता कि उस चर्चा में जर्मनी की यूरोपीय विजय की घटनाएँ भी बासी और अर्थहीन लगती थीं।” नेल्सन साहब, बातूनी नेल्सन मुझे धीरे-धीरे ऐसे बता रहे थे जैसे वे खुद उस वक्त मेरी जगह थे।

“तुम्हें याद होगा ही... अरे थोड़ा स्मृति को कुरेदो तो सब कुछ फ़िल्म की तरह दीखने लगेगा। आयरलैण्ड के एक मनोवैज्ञानिक ने तो कहा है आँख से जो कुछ भी देखा हो, कान से जो कुछ भी सुना हो, अंगुलियों से जिसे ज़रा भी छुआ हो, नाक भीतर पतली से पतली सुगंध की कोई लहर स्वन्दित हुई हो वह याद के रोल में जमा हो जाती है। बस उस रोल या जमा यादों की चरखी को थोड़ा-सा भी चलाओ तो वह अपने आप चलने लगेगी... तभी उन्हें कुछ और याद आ गया। तुम कभी कुंजापुरी के जंगलों में गए हो। वहाँ के बड़े-बड़े शिलाखण्डों के नीचे रास्ते हैं।”

“रास्ते”, मैंने चौंक कर कहा।

“मैं तो उन्हें गुफाएँ समझा था। बचपन में तो हम डर के मारे उन जगहों से गुजरते ही नहीं थे। झाड़ियों के बीच अजीब से भुतहा अंधेरे थे। लोग कितनी ही लोक गाथाएँ, परी - अप्सराओं की कहानियों से उसे जोड़ देते थे।”

“ठीक कहा तुमने।” नेल्सन साहब खुश होकर बोले -- वही तो मैं भी तुम्हें बताने जा रहा था। असल में जब हिन्दुस्तान की हालत देख कर मेरे परिवार वाले इंग्लिस्तान की ओर जाने लगे तो मैं अकेला पड़ गया। पहाड़ों में इसाईयों और अंग्लो इण्डियन की तादात थोड़ी ही थी। अपने अकेलेपन से बचने के लिए मैं जंगलों की सैर करने जाने लगा। शुरू में तो पलासडा के जंगलों में ही भटकता रहा। पर बाद में कुंजापुरी वाले इलाके में उन दिनों भी गया जब नवरात्रों में रात दिन कोई-न-कोई कुंजापुरी की पगडंडी पर दिखाई देता। मैं ऊपर मंदिर में भी गया। और जल्द ही नीचे ओडारों (पत्थरों को काट कर बनाए गए षरण स्थल) की ओर आ जाता। वहीं मुझे एक घसियारी मिली जिसे उस इलाके की सभी पगडंडियाँ मालूम थीं। वह नीचे एक निम्नजाति के गाँव की रहने वाली थी। उसने मुझे दूर पौड़ी से बसे एक इसाई परिवार से भी मिलाया था...

ओह ! क्या दिन थे ?” नेल्सन महोदय अपने आप ही खुश होते कहने लगे -- “क्या रोमांचक थीं वे यात्राएँ। एक तो मैं सचमुच उनमें था, दूसरे मैं गढ़वाली में पारंगत हो गया था, तीसरे बता नहीं सकता उस अनुभव को, वो शब्दों और भाषा से परे है। सबसे बड़ी बात थी कि मुझे जंगल के उस एकान्त में अनुभव हुआ कि सर्वशक्तिमान अपने अस्तित्व के संकेत छोड़ता रहता है।

सुदूर जंगल में अचानक आपका सामना किसी दिव्य संकेत से हो जाए और आप उसे समझने भी लगे तो समझना चाहिए कि यह सब परमशक्ति के द्वारा ही प्रेरित मामला है।

यह लिखते हुए कोई संकोच इसलिए नहीं हो रहा है कि नेल्सन साहब की सब बातों को डायरी में दर्ज कर दिया था और वहीं से उन्हें टीप लिया गया। इतने पर भी नेल्सन साहब की बातें ऐसी थीं कि उन्हें सुनने के लिए कोई भी कभी भी कहीं भी तैयार हो जाता।

“तो हुआ यह कि जंगल में अकेले मैं आ आकर कई दिन भटकता रहा।”

“तो कभी आप उन गुफाओं के भीतर नहीं गए ?”

“क्यों नहीं”, वे बोले और फिर रुक गए, “बात ये है कि कुछ डरावनी बातें सुनाऊँ तो डर तो नहीं लगेगा ?”

नहीं सर... मैं तो अपना डर बचपन में ही छोड़ आया था। उसका किस्सा भी सुनाने लायक है।

“तो सुनो”, वे यह कह कर चुप लगा गए।

थोड़ी देर तो मैंने इंतजार की। पर वे अपने हाथों से सिर पकड़े बैठे रहे। उनका गिलास खत्म हो चुका था। दूसरी बीयर का ऑर्डर देने का समय भी आ चुका था। मैं कुछ कहने ही वाला था कि वे बोल उठे --

“अरे... सुनो मिस्टर”

“जी”, मैंने हुंकारा भरा।

“एक गुफा से कुछ विचित्र आवाज़ें सुनाई देने लगी थीं। मैं उस वक़्त डर-सा गया था। आवाज़ें थी जो चीख भी और लयबद्ध रुदन थी। और चीख और लयबद्ध रुदन के बाद हँसने की आवाज़ें भी गपकने लगी थीं।” नेल्सन उस वक़्त अपनी खांटी बर्तानवी शैली में इतनी खूबसूरत अंग्रेज़ी में यह सब बयान कर रहे थे कि मुझे उनके भाषा ज्ञान पर रष्क हो रहा था। परन्तु वे जिस विषय की ओर बढ़ रहे थे वह मुझे एय्यारी और तिलिस्म की दुनिया का लग रहा था। और यही दुनिया थी जो मेरी यकीन के एकदम विपरीत थी। इसलिए मैंने झिझकते-झिझकते पूछा -- “सर, कहीं आप किसी वहम का षिकार तो नहीं हो गए ?”

“नहीं रे ! मेरे वैज्ञानिक मस्तिष्क ने एकदम खोज की कि कहीं ये आवाज़ें सुरंग पार की किसी बस्ती की तो नहीं हैं।”

“तो फिर आप पार गए क्या ?”

“अरे -- कैसे जाता भाई ?”

“बाहर बाहर से भी तो दूसरे सिरे तक पहुँचा जा सकता था। ऐसी कई सुरंगें पहाड़ों में हैं।”

“यह विचित्र सुरंग थी। उसके अंदर झाड़ झंखाड़ इतना ज़्यादा था कि तला देखना भी मुश्किल था। मैंने भीतर पाँव रखा था। पर बहुत गहरी खाई जैसी लग रही थी।”

“तो फिर आप ऊपर ही रहे, बाहर ही बाहर”

“और क्या ? वह तो मुझे सूझा कि इसका दूसरा सिरा खोजूँ। मैं जब सोच ही रहा था, कि तभी आवाज़ें दी”,

“कैसी आवाज़ें ?” मुझसे रहा नहीं गया। मैं बीच में ही बोल पड़ा।

“वही न जिनका जिक्र पहले कर चुका हूँ”, नेल्सन बोले -- “बात यह है आवाज़ों में चाहे स्पष्टता नहीं थी वे मुर्दा आवाज़ नहीं थी।” यह कह कर नेल्सन कुछ सोचने लगे। जब भी सोचते थे, तो उनकी मुद्रा थोड़ी जिद्दी बच्चे जैसी हो जाती। और वे कहीं दूर जैसे खो से जाते।

इस वक़्त उन्हें अपनी सामान्य मुद्रा में लौटने में थोड़ा वक़्त लगा। तब तक उनका गिलास बीयर से भर चुका था। और बीयर के गिलास में ऊपर जिस तरह से झाग जमी थी वैसे ही उनके विचार भी जैसे शब्दहीन होकर जम गए थे।

बाहर शहर का शोर खिड़कियों दरवाज़ों से भीतर आता भी था तो अर्थविहीन ध्वनियों जैसा फैलता था। और श्रीमान नेल्सन भी एक शोर की बात कर रहे थे।

“तो सर -- आपने गुफा के दूसरे सिरे का पता किया।”

“पहले तो मैंने ऐसी ही कोशिश की थी। पर उस पर तो शांतिपूर्ण ढंग से ही सोचा जा सकता था।”

“मैं कुछ समझा नहीं”, मैंने कहा।

“अच्छा मानो वह गुफा का दूसरा दरवाज़ा पहाड़ की किसी दूसरी ढलान पर खुलता तो क्या मैं वहाँ जा पाता ?”

“इसका मतलब है कि गुफा बहुत लंबी थी ?”

“मुझे उसकी लंबाई नहीं मालूम”, नेल्सन ने कुछ रुखेपन से उत्तर दिया। यह उनका आयरिष स्वभाव था। जब कभी किसी बात में जटिलता प्रवेश कर जाती थी तो चिढ़ के रूप में वे रुखे हो जाते थे। उस वक़्त उचित था कि मैं बात बदलता। और यही सोच कर मैंने नए ढंग से बात करने का इरादा बनाया।

“सर कुंजापुरी के चारों तरफ के जंगलों में सुनते हैं तरह-तरह के जानवर रहते हैं।”

“हाँ -- भाई। तरह-तरह के। असल में यह तो पर्वतीय जंगल है। देहरे के मैदानी इलाकों के जंगलों में तो बड़े-बड़े जानवर रहते हैं जिन्हें हम कई दफे सड़कों पर भी देख सकते हैं। मैं तो नरेन्द्र नगर देहरे की यात्रा में हर हमेशा कोई-न-कोई विचित्र प्राणी अवश्य देखता हूँ। मुझे याद है मैंने भालू, सुअर और बड़े-बड़े बाघों के इलावा हाथी, नील गाय तक देखे हैं।... क्या मज़ेदार संसार है जानवरों का...?”

“सर मैंने सुना था कि पहले ये जंगल दूर-दूर तक फैले हुए थे।”

“और क्या ? अरे यह तुम्हारी ओडाथली। यह भी एक जंगल का हिस्सा थी जो शिवालिक की तराई की तरह।”

“और शहर कब बनने लगा था ?”

“समझो महाराजा कीर्तिशाह चाहते थे कि थिरीनगर और गणेश प्रयाग की तरह गरम जगह न हो।”

“हाँ -- टिहरी और थिरीनगर पक्की तौर पर गरम जगहें हैं।” मैंने कहा, “वहाँ शुरू में ही क्यों राजधानियाँ बनाई गई होंगी ?”

“इसके लिए तुम्हें इतिहास की किताबें पढ़नी पड़ेंगी।”

“जी”, मैं इतना कह कर चुप लगा गया।

“जानते हो हिमालय का यही क्षेत्र सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण, ऐतिहासिक दृष्टि से सक्रिय रहा है। इतना होने पर भी इतिहासकारों ने राजवेशी की पदावली का गुणगान किया है ?”

“ऐसा क्यों हुआ होगा ?”

“इसके कारणों की खोज होनी चाहिए।”

“पर अभी तक नहीं हुई न ?”

“कोई आयेगा और करेगी ही।”

“इसकी कोई संभावना नहीं दीखती...”

“नहीं ऐसी बात नहीं है”

“पर सर कहीं कोई पहल भी तो नहीं दिखाई देती।”

“ऐसा तुम कैसे कह सकते हो ?”

“तो बताइए न ?”

“अरे भाई नये इतिहास के अध्ययनों में अब ऐसी कोशिशों का अस्तित्व है। इससे इन्कार करना शुरू होगा ?”

“परन्तु सर इतिहास में प्रमाणों के लिए तो...”

“तुम कहना यही चाहते हो कि इतिहास प्रमाण के लिए फिर से राजवंशों के अभिलेखागारों में भटकता रहता है ?”

“नहीं। मेरा मतलब...”

बीच में टोकते हुए वे बोले -- “यह इतिहास का मामला है। हमारे पास व्यक्तिगत किस्म का कोई भी आधार स्वीकृत नहीं होगा।”

शाम का वक्रत होता तो नेल्सन साहब सीधे चकराता रोड की तरफ निकलते। उस तरफ कभी-कभी तो झुण्ड के झुण्ड एग्लो इंडियन लोग बाहर घूमने आते तो माहौल उत्सवधर्मी हो आता। परन्तु जैसा कहा गया है ज़्यादातर एग्लो इंडियन्स अपने घरों में ही बन्द रहते। लेकिन कभी-कभार आश्चर्य में डालने वाला हो जाता

और वह एक विचित्र से रूप ले लेता और हम पाते कि वह एक जन सम्मेलन बन आता जिसके अपने नियम होते।

बीयर की चुस्कियाँ लेते लेते अचानक ही वे अपनी कलाई वाली घड़ी देखने लगे। “अरे इतना टाइम हो गया ?” इनके चेहरे पर चिन्ता की रेखाएँ उभरने लगीं।

“जी सर”, मैंने इतना ही कहा और चुप हा गया।

“तो मैं बता रहा था कि इतिहास में ऐसा कुछ घटा था कि आज हम अचरज के अलावा कुछ समझ ही पाते। और अचरज बस एक याद है।” नेल्सन ने कहना शुरू किया।

“यहाँ तक तो ठीक है सर”, मैंने बीच में एक सवाल पूछने के लिए भूमिका बनाई।

“सुनो... टोके नहीं। सिर्फ सुनो”,

“जी”, मैंने कहा।

मैं जो चीज़ बता रहा हूँ उसे ध्यान से समझने की ज़रूरत है। हम जहाँ भी रहते हैं -- हम हैं तो हिन्दुस्तानी। अब मैं बर्तानी नस्ल का होते हुए भी हिन्दुस्तानी हूँ। यहीं पैदा हुआ। यहीं की षाक-सब्जियों से मेरा जिस्म बना हुआ है। मैं यहीं की घास पात बन जाऊँगा। समझे न...” नेल्सन ने बीच में रुकते हुए अपनी बात जारी रखी -- “अब यह मुल्क समझो सदियों से हम जैसे लोगों को जन्मा रहा है और हम जानते ही सबसे पहले अपनी मातृभूमि को भूल जाते हैं।”

सुनते-सुनते मुझे लगा मैं यह क्या सुन रहा हूँ ? कहीं नेल्सन साहब को चढ़ तो नहीं गई। हो सकता हो बीयर पीने से पहले भी कहीं से पीकर चलें हों। मुझे अपने में उलझते देख वे सहसा सतर्क से हुए -- क्योंकि मुझे देखते-देखते उन्होंने अपनी एक कुहनी मेज से हटाई।

“अरे तुम मेरी बात तो सुन ही नहीं रहे हो। तुम तो कहीं और खोये हुए हो।”

“नहीं... सर...” मैंने सफाई देने की भूमिका बनाई। असल में आपकी बात सुनते ही मैं...”

“ना... ना...”, उन्होंने प्यार से डपटते हुए कहा -- “तुम कहीं कुछ और सोच रहे थे। अरे बिराहमन हो ज़रूर क्रिस्तानों के बारे में कुछ सोच रहे होगे...”

“नहीं... नहीं सर। मैं बस यही सोच रहा था कि हमारे शहर में आज भी इस तरह की भीड़भाड़ नहीं है।” उसने जान-बूझ कर बात पलटते हुए कहा।

उन्होंने अपना आखिरी घूंट पिया और बोले -- “अब बस... हाँ तो मैं तुम्हें बता रहा था कि पहाड़ी रियासतों के ऐतिहासिक रिश्ते बहुत ही रोचक हैं और हम उनसे उन सच्चाईयों की झलक पा सकते

हैं जिनके आधार पर यह कहना आसान होगा कि पहाड़ी बाकी लोगों से कैसे अलग हैं?”

“क्या हम गरीबी को भूल जाएँ?” मैंने अपना एतराज-सा व्यक्त करने के लिए कहा, “मैदानी लोगों के मुक्ताबले हम पहाड़ी ज़्यादा गरीब हैं। पहाड़ों का ज़्यादा शोषण हुआ है।”

“तुम कम्यूनियों की संगत और प्रभाव से कुछ ज़्यादा ही प्रभावित हो।”

“ऐसा नहीं सर। मैं तो यह इसलिए कह रहा हूँ कि इस बात की पड़ताल की जा सकती है कि पहाड़ों पर लोग भुखमरी के कगार पर हैं।”

“ऐसी कोई रिपोर्ट राजशाही के दिनों भी नहीं आई थी। न कोई वारदात कहीं घटी?”

“पहाड़ों की खबर कोई इकट्ठी करता ही नहीं है। आजकल के पत्रकार तो वहाँ कहीं जाते ही नहीं। बस सुनी सुनाई बातों पर पत्रकार लोग यकीन कर लेते हैं।”

यह तो मैं मानता हूँ। पहाड़ों की रिपोर्टिंग कम होती है। पर यह भी तो मानो कि प्रसिद्ध तीर्थस्थानों की यात्रा से भी कुछ-न-कुछ वित्त गढ़वाली जनता को मिलता रहता है।”

“बहुत थोड़ा सर। यह छलावा-सा है। मान लें कि सड़क किनारे के लोगों को तो कुछ फायदा होगा, पर दूर-दूर बसे लोगों के लिए कुछ नहीं है।”

“फिर भी फसल है... ऐसा नहीं जैसा तुम कह रहे हो। मालगुजारी के रिकार्ड देखो तो मालूम हो जाएगा कि गढ़वाल की सालाना पैदावार कितनी है।” नेल्सन तर्कपूर्ण थे।

“फिर भी सर। मैदानों की तुलना में... आप एक छोटी बियर और लो लीजिए सर”,

“यार काफी हो गई”,

“थोड़ी देर बैठने बातें करने का मौका हाथ में रहेगा ना।”

“चलो ले लेते हैं। तुम भी तो कुछ लो।”

“जी सर। मैं अपनी ड्रिन्क ले लेता हूँ।”

“मैं तो तुम्हें इतिहास के बहाने कुछ और बताने की कोशिश में था...”

“जी सर मुझे अच्छा लग रहा है।”

तभी हम लोगों के पेय आ गए और अचानक कुछ नये लोग भी बार में आ घुसे।

खोटी अंग्रेज़ी में, अपनी विलायती किस्म की अदाओं से एक दूसरे से बतियाती लड़कियाँ हँसती-हँसती घुसीं। और नेल्सन

महोदय को देख कर सहम कर बारी-बारी उनका अभिवादन करने के लिए आगे आने लगीं।

“जानते हो तुम लोग?” उन्होंने उन्हें अपने इर्द-गिर्द खड़े होने दिया, “यह मेरा पुराना छात्र है।” यह सब उन्होंने बेहतरीन अंग्रेज़ी में कहा, “मुझे इस पर बहुत गर्व है। यह रियासत के एक आला अफसर का बेटा एक ऐसे अफसर का जो विद्वान भी था और हँसोड भी।”

लड़कियों ने अभिवादन के साथ अपने हाथ आगे किए --

“मैं रीना हूँ सर”

और मैं “हिना”, दूसरी ने कहा।

“हिना”, मैं उसका हाथ पकड़े बोला -- “यह हिन्दू नाम तो नहीं।”

“जी सर हम हिन्दुस्तानी मुसलमान हैं।”

“मुबारक, तुम नेल्सन जी की पिश्या हो। मुबारक। “मैंने उसकी तारीफ की अपनी तारीफ सुन वह कुछ झेंपी और नेल्सन की तरफ देखने लगी।”

“तुम्हें अचरज होगा यह जान कर कि इसे “..नमः सिद्धम” की दीक्षा मैंने ही दी थी।

लड़कियाँ हैरान थी।

“सर एक अंग्रेज़ और संस्कृत में दीक्षा”, एक लड़की हिन्दी में बोली।

नेल्सन ने एकदम संस्कृत उच्चारण में कहा, “भारतवर्षे जन्म सुखंद, तत्र तं विद्याध्यन...।” उन्हें संस्कृत बोलते मैं भी दंग रह गया। “तुम लोगों को नहीं पता होगा। मैं जब नरेन्द्र नगर में था तो अक्सर ऋशिकेश जाकर दिव्य जीवन संघ में पिवानन्द महाराज के दर्शन करता था। खैर... आओ बैठो। आसपास ही आ जाओ। हम लोग यहाँ काफी देर से बैठे हैं।”

बाहर देहरे की रौनक देखने ही वाली थी। लोग पलटन बाज़ार की ओर लपके आ रहे थे। घंटाघर के सामने की रिफ्यूजियों की दुकानों पर भी भीड़ बढ़ने लग गई थी।

“सर आप तो संस्कृत भी ऐसे ही जानते हैं जैसी अंग्रेज़ी।”

“नहीं बीबा”, उन्होंने प्यार से देहरादून में रिफ्यूजियों द्वारा लाए पंजाबी शब्दों का हिन्दी में जैसे पिटारा खोल दिया, “ओय भई हुण कित्थे जाणां, रहणां खाणां पीणां एत्थे ही मर जाणां”, वे अपनी रौ में पंजाबी लहजे में हमें हैरान करने लगे।

लड़कियाँ उनसे उसी तरह प्रभावित थीं जिस तरह आज़ादी के आखिरी वर्षों में हम लोग। उस वक़्त कायदे से हम लोग बच्चे ही थे। पर पहाड़ी स्कूल के हेडमास्टर के रूप में नेल्सन इतने लोकप्रिय थे

कि आश्चर्य होता है। मुझे अपने जूनियर स्कूल की स्मृतियाँ अक्सर उन्हीं को केन्द्र में रखकर याद आती हैं। आज मैं उनका वैज्ञानिक विश्लेषण करता हूँ तो मुझे लगता है शरीर का अपना एक अलग विज्ञान है -- एक ऐसा अलग विज्ञान जिसे समझने के लिए अपने इर्द-गिर्द को ज़्यादा गहराई से समझना पड़ेगा। उन यादों में बहुत-सी तो न भूलने वाली यादें हैं। और यादों के विवरणों के साथ जाने क्यों अपने उस छोटे से कस्बे की सारी चीजें एक साथ उभर कर आ जाती हैं।

लड़कियाँ अब उसी मेज के इर्द-गिर्द कुर्सियाँ जोड़ कर बैठ गई थीं। और मैंने पाया कि नेल्सन महोदय कुछ ज़्यादा ही वाचाल हो आए थे।

“जब मैं नरेन्द्र नगर में पढ़ाता था तो मुझे सभी कुछ पढ़ाना पड़ता था। आज़ादी के बाद हाई स्कूल, जूनियर हाई स्कूलों के रूप में स्कूलों का पुनर्गठन हुआ तो नरेन्द्रनगर का स्कूल भी उसी जद में आ गया”,

“क्या वह ‘को एड’ स्कूल था सर”

“एकदम”, नेल्सन ने उत्तर दिया।

“हाँ -- मुझे भी याद है। पर लड़कियों की संख्या बहुत कम थी क्योंकि...”

“एक लड़कियों का स्कूल भी खुल गया था।” नेल्सन ने सूचना दी, “पर आज़ादी से पहले वही लड़कों के लिए भी था और लड़कियों के लिए भी।”

हमारे वक्त में भी कुछ लड़कियाँ अभी कक्षाओं में थीं सर”, मैंने जोड़ा।

“वो ही लड़कियाँ जो पहले से पढ़ती थीं वहाँ दह गई थी क्योंकि लड़कियों के स्कूल में अभी बड़ी कक्षाएँ जारी नहीं हुई थीं।” नेल्सन ने बताया।

“जब हम पढ़ते थे तब आपके साथ बहुत अच्छे-अच्छे अध्यापक थे।”

“आज़ादी के बाद मैंने कुछ ही दिन पढ़ाया होगा”, नेल्सन बोले, और जैसे पुरानी यादों में खो गए। अंग्रेज लोग धीरे-धीरे भारत छोड़ कर जा रहे थे। क्या नजारा था वह। बच्चों तुम्हें यकीन नहीं होगा... बल्कि हैरानी होगी... यह कह कर वे चुप हो गए।

उनकी चुप्पी काफी देर तक रही। और हम सब एक दूसरे का मुँह देखते रहे।

“नरेन्द्र नगर ऐसी जगह थी जिसे छोड़ना सचमुच कठिन था।” नेल्सन ने फिर से जैसे किसी किस्से का सिरा पकड़ा, “और हाँ अरे वह तो भूल ही जाता। इस गप्पू के पिता ने शांत रियासत के जीवन

में एक ऐसा तूफान खड़ा कर दिया था क्या बताऊँ... कुछ ही बरस पहले की तो बात थी वह।” नेल्सन ने मुझे देखा और कहना शुरू किया, “मेरे द्वारा दीक्षित किए गए शिष्य को देख कर मैं सचमुच खुश हुआ।”

लड़कियाँ भौंचक-सी थीं। एक बोली -- “ऐसा क्या काण्ड था सर जिससे तूफान उठ खड़ा हुआ।”

“अरे पूछो मत”, नेल्सन ने कहा -- “किसी दिन मेरे घर आओ तो सारी बातें बताऊँगा।”

“वह तो ठीक सर। पर आज सुनाईए न...” एक लड़की ने इसरार किया।

“तो सुनो। गप्पू के पिता थे सनातनी ब्राह्मण और वे उन चार जातियों में एक थे जिन्हें रियासत में अलिखित से अधिकार मिले हुए थे। मस्लन उन पर पाबन्दियाँ कम थीं। बस एक उनका घोषित सिद्धांत था कि वे अपने रिश्ते चार जातियों के बीच ही कायम कर सकते थे।”

“इसके पिता पहले आदमी थे जिन्होंने नियम तोड़ दिया था। उन्होंने चार जातियों वाली पाबन्दी तोड़ी थी तो ग्राम समाज में हचल-सी आ गई थी...”

वह रात दूसरी रातों से भिन्न थी।

पलटू मेरे जोर देने पर रुक तो गया था पर वह कुछ उलझन में फँसा दिखाई दे रहा था।

उसी ने मुझे ये बातें बताई थीं। उससे और खुद से जुड़ी बातें तो मैं करीब-करीब भूल-सा गया था। बल्कि कुछेक बातें तो उसी ने मुझे बताई थीं। और अचरज था कि मुझे उसमें से कुछ भी याद नहीं था। मैं अपनी स्मृति को लेकर थोड़ा परेशानी महसूस कर रहा था।

कुछ ही देर पहले हम लोग अपने साथियों के साथ बाहर बैठे गप्पे हांक रहे थे। और अब हम अपने एकान्त में एक दूसरे के बहुत करीब होने पर भी बहुत दूर पहुँचे हुए थे।

“यार मुझे नरेन्द्र नगर की बहुत याद आती है”, उसके बोलते लगता था वह रो देगा।

“कभी-कभी कैपूर्य ऐसे चमत्कार करता ही है।”

मैंने सिर्फ तर्क के आधार पर उसे आश्वस्त करने के लिए कहा।

“नहीं... नहीं तू नहीं समझेगा। अब एक बात कि मुझे हमेशा जब भी सपने आते हैं तो सिर्फ वहीं के यानी सपने में भले ही मैं विदेश में बैठा दिखाई दूँ थोड़ी ही देर में जैसे मैं अपने पुराने शहर की किसी सड़क पर या सड़क की मुंडेर पर या लम्बे बाज़ार के किसी हिस्से में दिखाई देता हूँ।”

“तुझ पर स्मृतियों ने कब्जा कर रखा है।”

“छोड़ो भी ऐसे तर्क, मैं तुम्हें जुड़े किस्से सुनाता हूँ। सुनो”...

मैं अपने बचपन का एक ऐसा पन्ना तुम्हें बताता हूँ जिसे बताने की मेरी जरा भी इच्छा नहीं। पर मुझे लगता है उम्र बढ़ने के साथ मैं कुछ ब्यौरे जरूर भूल जाऊँगा और उन्हें भूलने के बाद मूल कथा से भी टूट जाऊँगा। वैसे भी मैं उस नाल से अपने जन्मते ही टूट चुका था। सुन रहे हो न तुम...”

“हाँ... हाँ... सुन रहा हूँ भाई। तुम किसी टूटे नलके की बात कर रहे हो।”

“सत्यानाश हो तेरा। हरामी मैं अपने जीवन की सबसे अहम सच्चाई से तुम्हें जोड़ रहा था और तुम हो कि टूटी नाल को टूटा हुआ नल या नलका समझ बैठे हो। न ही सुनाऊँ तो ठीक रहेगा।”

“अरे सुनाओ भई सुनाओ” -- अब मेरी बारी थी कि उसे पुचकारूँ और उससे आगे का किस्सा सुनूँ।